श्रील प्रभुपादजीका
उपदेशामृत
(द्वितीय भाग)
भक्ति–संबंधी सभी प्रश्नों का समाधान
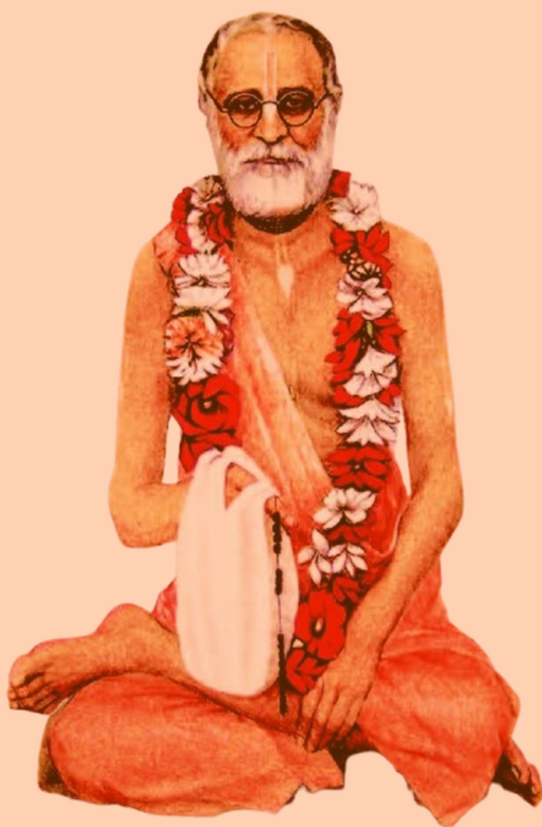
श्रीभक्तिप्रज्ञान गौड़ीय वेदान्त विद्यापीठ प्रकाशन
हेसरघट्टा, बेंगलुरु–560088
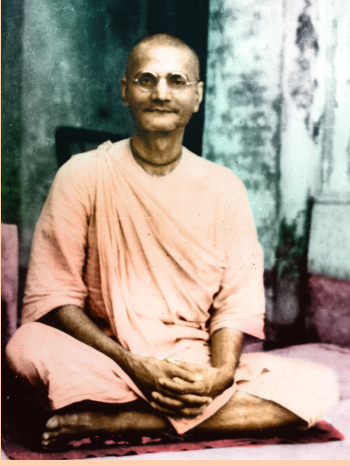
नित्य-लीला-प्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव
गोस्वामी महाराज

नित्य-लीला-प्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त
स्वामी महाराज
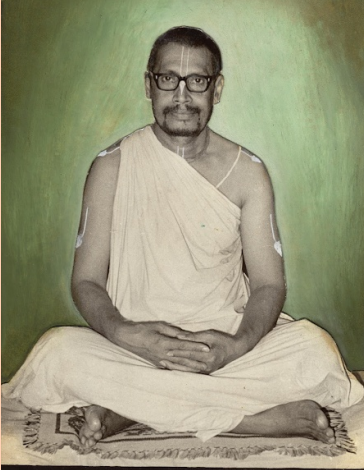
नित्य-लीला-प्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन
गोस्वामी महाराज
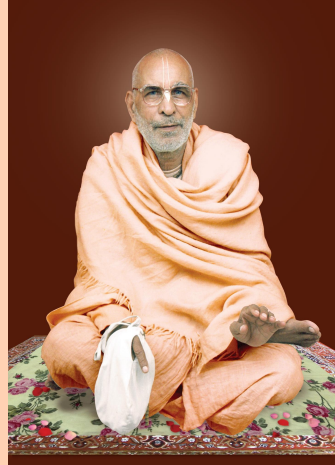
नित्य-लीला-प्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण
गोस्वामी महाराज

श्रील प्रभुपादजीका
उपदेशामृत
(द्वितीय भाग)

यह पुस्तक पढ़ें और पाएं—

(1) आपके भक्ति-संबंधी सभी प्रश्नों का समाधान!
(2) दिव्य ज्ञान और मार्गदर्शन
(3) श्रील प्रभुपाद के अद्भुत उपदेशों का लाभ

श्रीभक्तिप्रज्ञान गौड़ीय वेदान्त विद्यापीठ प्रकाशन
हेसरघट्टा, बेंगलुरु-560088

प्रकाशक
श्रीपाद भक्तिवेदान्त दण्डी महाराज, हेसरघट्टा, बेंगलुरु–560088
प्रकाशन दिनांक
जनवरी 29, 2025, बुधवार, श्रील गुरुपादपद्म नित्य–लीला–प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज का शुभ आविर्भाव दिवस। श्रीव्यासपूजा–महोत्सव।
मुद्रण–संयोजन — **परिमल मुद्रणालय, बेंगलुरु**

यह पुस्तक एवं अन्य भक्ति ग्रंथ निम्नलिखित मंदिरों और धर्म–प्रचार केंद्रों से उपलब्ध हैं—

1. **श्रीरंगनाथ गौड़ीय मठ**, हेसरघट्टा, बेंगलुरु–560088 मोबाइलः 9021625228, 6369229219 ईमेलः bvdandi@gmail.com, daamodhar.srgm@gmail.com
2. **आनंद धाम गौड़ीय आश्रम**, कैमार वन, संत कॉलोनी, परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन–281121 जिलाः मथुरा, मोबाइलः 7017992024 वेबसाइटः https://anandparadise.org/
3. **श्रीलाड़लीलाल गौड़ीय मठ**, श्री राधा कृष्ण मंदिर, जगदीश मिष्ठान्न भंडार के सामने, कालियान टोला, गोल दरवाजा, चौक, लखनऊ–226003 मोबाइलः 8630195564, 9839013294 ईमेलः amitkpr6@gmail.com
4. **श्रीतिरुमला–तिरूपति गौड़ीय चैरिटेबल ट्रस्ट**, 18–2–217, अशोक नगर, तिरूपति, राज्यः आंध्र प्रदेश, पिनः 517501 मोबाइलः 9000555556, 9290452747 ईमेलः vishnudaivata@gmail.com
5. **श्रीश्रीराधा–कृष्ण–मंदिर**, तायप्पा तोटम्, बागलूर रोड, होसूर पिनः 635109. तमिलनाडू. मोबाइलः 9788179777
6. **श्रीगौर–नारायण गौड़ीय मठ**, बंगाली कैंप, आरएच नं. 3, पोस्टः जवालगेरा, तहसीलः सिंधनूर, पिनः 584128, जिलाः रायचूर, राज्यः कर्नाटक, मोबाइलः 9986065404, 9632395279, 8147941699
7. **श्रीगौरकालीराधाकृष्ण मंदिर**, **संपर्कः उत्पल मंडल,** ग्रामः उत्तर सोनाखाली, पोस्टः नारायणतला, पी.एस.: बासंती, जिलाः दक्षिण 24 परगना, राज्यः पश्चिम बंगाल पिनः 743329 मोबाइलः 9609308189
8. **गोकुल भवन**, 2/5 मिशन कंपाउंड, कोट्टारम–629703, राज्यः तमिलनाडु **संपर्कः राधिका दीदी, डॉ. भगवतीकान्त**

प्रभु फोनः 7502222794 ईमेलः bkdasa@gmail.com
9. **श्रीगौरनारायण सुरभि गोशाला**, नन्दिग्राम फार्मस्, गाडेवाडी, पोस्टः बोरिबेल, तहसीलः दौंड, जिलाः पुणे, राज्यः महाराष्ट्र, पिनः 413801 मोबाइलः 8077270628 ईमेलः sgnsgct19@gmail.com
10. **श्री शुकदेव प्रभुजी (श्री सुधाकर बनकर)**, फ्लैट नंबर 801, प्लॉट नंबर 41, सेक्टर-17, मेगा आइस्टा, उलवे नोड, नवी मुंबई, पनवेल, पोस्टः पनवेल, जिलाः रायगढ़, राज्यः महाराष्ट्र पिनः 410206, मोबाइलः 9975012294

वेबसाइट

https://www.purebhakti.com/
https://sites.google.com/view/ranganatha
https://bkdasa.synology.me:2011/

आभार

हम इस पुस्तक का बंगाली संस्करण उपलब्ध कराने के लिए **गौड़ीय समिति** के **त्रिदण्डी स्वामी श्रीभक्तिविजय श्रीधर महाराज** के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। हमने **श्री बांकेबिहारी प्रभु (श्रीगौर ब्रज माधुरी समिति, मथुरा)** द्वारा प्रकाशित हिंदी संस्करण और **श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा** से **श्रील गुरुदेव** द्वारा प्रकाशित श्री भागवत पत्रिका की पिछली प्रतियों का उपयोग किया है। इसके अलावा, हमने **IGVP (अंतर्राष्ट्रीय गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन, गोपीनाथ भवन, वृन्दावन)** द्वारा बनाई गई शब्दावली का भी उपयोग किया है। हम **श्रीमती श्यामरानी दीदी** सहित सभी कलाकारों, फोटोग्राफरों, संपादकों, अनुवादकों और योगदान देने वाले समस्त भक्तों के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। हम **श्रीआनन्दस्वरूप केलाजी, श्रीगोकुलचन्द्र प्रभुजी, श्रीमती मधु खंडेलवाल दीदी, रॅक्मो प्रेस के श्रीराकेश एवं श्रीमुकेश भार्गवजी, श्रीकृष्ण दास प्रभुजी, श्रीहृदय-चैतन्य प्रभुजी, श्रीमती माधवी दीदी, श्रीमती लीला दीदी (ऑस्ट्रेलिया), श्रीश्यामलाल प्रभुजी (केरल)** और अन्य भक्तों के प्रति उनकी सहायता के लिए भी आभार व्यक्त करते हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करने वाले सभी भक्तों के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 8 फरवरी 2024 को दिल्ली के प्रगति मैदान स्थित भारत मंडपम् में जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद की 150वीं आविर्भाव तिथि के अवसर पर आयोजित एक कार्यक्रम में श्रील प्रभुपाद के सम्मान में एक स्मारक टिकट और सिक्का जारी किया।

अनुक्रमणिका

श्रील प्रभुपादजीका उपदेशामृत (प्रश्न एवं उत्तर)
प्रश्न सूची

क्रमांक	प्रश्न	पृष्ठ संख्या

* * *

श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रदत्त नामभजन की शिक्षा

जिन लोगोंकी श्रीनाम तथा अपने इष्टमें रुचि नहीं है, केवल वे लोग ही अपने इन्द्रियसुखकर सुर, ताल, लयरूप तौर्यात्रिकमें आसक्त रहते हैं। मैं इन लोगोंको ताल–ठोका सम्प्रदाय कहता हूँ। 'हरे कृष्ण' महामन्त्रका उच्चस्वरसे श्रद्धापूर्वक कीर्तन करनेसे जाड्य, आलस्य एवं सब प्रकारके अनर्थ दूर हो जाते हैं और उसमें तन्मय होनेसे सर्वार्थकी सिद्धि होती है। इन तालठोका सम्प्रदायके लोगोंमें जड़ीय लाभ–पूजा–प्रतिष्ठाका जञ्जाल भरपूर रहता है। शुद्ध वैष्णवगण इनसे सर्वथा दूर रहकर श्रद्धापूर्वक तन्मय होकर सङ्कीर्तनके माध्यमसे कृष्णनामका साधन करते हैं। इस प्रकारके नामकीर्तन द्वारा उनके हृदयमें नामी प्रभुके अप्राकृत श्रीरूप, गुण, लीला आदिकी स्फूर्ति होती है। ऐसे शुद्ध नामसे ही भगवत्प्रेमका उदय सम्भव है।

चुंचुड़ा मठमें श्रील प्रभुपादका विरहोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत सभी मठोंमें दिसम्बर, १९५९ ई. में जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी विरह तिथिका अनुष्ठान विशेष रूपसे सम्पन्न हुआ। श्रीधाम नवद्वीप, मथुरा, गोलोकगंज आदि मठोंमें उक्त विरह महोत्सव बड़ी श्रद्धाके साथ सम्पन्न हुआ।

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुंचुड़ामें परमाराध्य श्रील आचार्यदेव स्वयं उपस्थित रहनेके कारण यहाँ उक्त तिथि विशेष रूपमें श्रद्धाके साथ अनुष्ठित हुई। मठरक्षक त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त वामन महाराजके विशेष आग्रहसे उस दिन मठसेवकों एवं श्रीसमितिके आश्रित भक्तोंने पाठ कीर्तनके पश्चात सर्वप्रथम परमाराध्य श्रील गुरुदेवके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदानकर श्रील प्रभुपादके चरणोंमें भी पुष्पाञ्जलि प्रदान की। तदनन्तर श्रील प्रभुपादके पटविग्रहकी आरति श्रील गुरुपादपद्मके द्वारा रचित आरति कीर्तनके द्वारा सम्पन्न हुई। शामकी धर्मसभामें श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने श्रील प्रभुपादकी पत्रावली, प्रबन्धावली तथा गौड़ीय पत्रिकासे श्रील प्रभुपादके उपदेशोंका पाठ किया।

श्रील आचार्यदेवने भाषणके माध्यमसे बड़ा ही उपयोगी उपदेश दिया—"हम प्रति वर्ष इस विशेष तिथिमें विशेष रूपसे हरिकथाका कीर्तन किया करते हैं। श्रील प्रभुपाद सिद्धान्त सरस्वती हरिकीर्तनके मूर्तिमान विग्रह स्वरूप थे। जिन लोगोंने उनका सङ्ग लाभ किया है, उन्होंने निश्चित रूपमें इस विषयकी उपलब्धि की है। हरिकथा-कीर्तन करते समय वे एक मुखमें सहस्रवदन वन जाते थे। हमलोग २४ घण्टेमें एक दिनकी गणना किया करते हैं। श्रील प्रभुपादके हरिकथा कीर्तनमें एक दिन हजारों दिनोंमें बदल जाता था। भगवत्-कीर्तन करते समय वे कितना आनन्द अनुभव करते, उसकी सीमा भाषामें व्यक्त नहीं की जा सकती। साधारण मनुष्य आहार, निद्रा आदिमें ही केवल आनन्दका अनुभव करते हैं। इसीलिए वे अपने समस्त कर्त्तव्य कर्मोंको छोड़कर आहार, निद्रामें ही प्रमत्त रहते हैं। आहार, निद्राकी अपेक्षा और कोई भी आनन्दमय वस्तु है, इसका उन्हें ज्ञान नहीं। श्रील

प्रभुपाद आहार, निद्राकी अपेक्षा हरिकथाके कीर्तनमें ही अधिक आनन्द पाते थे। और इसीलिए वे आहार, निद्राको परित्यागकर भी हरिकथाका कीर्तन करते थे।"

श्रील आचार्यदेवने अपने प्रवचनमें अविद्या और माया, प्राचीन एवं आधुनिक निर्विशेष विचार, इतिहास और तत्त्ववस्तु एक नहीं, जीवोंका कल्याण करने में श्रील सरस्वती ठाकुरका अवदान, विभिन्न दार्शनिक विचारोंका तारतम्य तथा परतत्त्वका एकत्व आदिके सम्बन्धमें प्रभुपादकी शिक्षाके सम्बन्धमें विशेष रूपसे विवेचन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने परतत्त्वकी त्रिविध प्रतीतियाँ ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान्, मायावश्य ईश्वरवाद, अचिन्त्य शक्तिमान श्रीकृष्ण, स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी अचिन्त्यलीला, श्रीकृष्णलीलाका नित्यत्व, जीवोंका नित्यत्व आदि विषयोंपर भी गम्भीर तत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किया।

* * *

श्रील प्रभुपाद का अवदान

('जैवधर्म' ग्रंथ की 'प्रस्तावना' से उद्धृत)

(ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज)

श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने समग्र विश्वमें श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा प्रकटित धर्म-प्रचारकके मूल सेनापतिके रूपमें जिस महापुरुषको इस जगतीतल पर आविर्भूत कराया है, वे मदीय गुरुपादपद्म जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद परमहंसकुल चूडामणि अष्टोत्तरशत श्री श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके रूपमें समग्र विश्वमें सुपरिचित हैं। इन महापुरुषको जगत्में आविर्भूत कराना—श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरकी एक अतुलनीय अभिनव कीर्ति है। साधु-वैष्णव समाज उन्हें संक्षेपमें 'श्रील प्रभुपाद' कहकर ही गौरव ज्ञापन करता है। मैं भी भविष्यमें उक्त परममुक्त महापुरुषके नामके स्थलपर 'श्रील प्रभुपाद' का उल्लेख करूँगा।

श्रील प्रभुपादने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके पुत्रके रूपमें या अन्वय रूपमें, यहाँ तक कि पारम्पर्य रूपमें आविर्भूत होकर समग्र विश्वमें श्रीमन् महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव

द्वारा आचरित और प्रचारित श्रीमाध्व गौड़ीय वैष्णवधर्मकी अत्युज्ज्वल पताका उत्तोलन करके धर्मराज्यका प्रभूत कल्याण और उन्नति–साधन किया है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड और बर्मा आदि सुदूर पश्चिमी और पूर्वी देशसमूह भी इन महापुरुषकी कृपासे वञ्चित नहीं हुए हैं। सारे भारतवर्ष और भारतके बाहर सारे विश्वमें चौंसठ प्रचारकेन्द्र—गौड़ीय मठ स्थापित कर श्रीचैतन्यवाणीका प्रचार किया था। साथ ही उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके सारे ग्रन्थोंका प्रचार करके जगत् में अतुलनीय कीर्त्ति स्थापित की है। कालके प्रभावसे अर्थात् कलिकी प्रबलतासे गौड़ीय वैष्णव धर्ममें नाना प्रकारके असदाचार–कदाचार, असिद्धान्त–कुसिद्धान्त आदिका प्रवेश हो जानेके कारण तेरह अपसम्प्रदाय निकल पड़े थे। ये तेरह अपसम्प्रदाय हैं—

आउल बाउल कर्त्ताभजा नेड़ा दर्वेश साईं।
सहजिया सखीभेकी स्मार्त्त जाति गोसाईं॥
अतिवाड़ी चूड़ाधारी गौराङ्गनागरी।
तोता कहे ए तेरह सङ्ग नाहि करि॥

श्रील प्रभुपाद द्वारा श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके ग्रन्थोंका प्रकाश और प्रचार होनेसे पूर्वोक्त अपसम्प्रदायोंकी अपचेष्टाओंका प्रचुर परिमाणमें ह्रास हुआ है। फिर भी दुःखका विषय है कि इतना होनेपर भी कलिके प्रभावसे आहार–विहार और 'बाँचा पाड़ा' अर्थात् जीवनबीमा (life insure) ही किसी–किसी धर्म–सम्प्रदायके प्रचारके प्रधान विषय हो गये हैं। वास्तवमें यह सब पशुवृत्तिका ही नामान्तर या पाशविक अनुशीलनका प्रसारमात्र है। हम पहले ही ऐसा कह आये हैं।

* * *

श्रील प्रभुपादकी आरती

(श्रील गुरुदेव द्वारा लिखित 'आचार्य केसरी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी—तत्त्वसिद्धान्त और शिक्षा-समन्वित जीवनचरित्र' से उद्धृत)

जय जय प्रभुपादेर आरति नेहारी।
योग मायापुर-नित्य सेवा-दानकारी॥
सर्वत्र प्रचार-धूप सौरभ मनोहर।
बद्ध मुक्त अलिकूल मुग्ध चराचर॥
भकति-सिद्धान्त-दीप जालिया जगते।
पञ्चरस-सेवा-शिखा प्रदीप्त ताहाते॥
पञ्च महाद्वीप यथा पञ्च महाज्योतिः।
त्रिलोक-तिमिर-नाशे अविद्या दुर्मति॥
भकति विनोद-धारा जल शङ्ख-धार।
निरवधि बहे ताहा रोध नाहि आर॥
सर्ववाद्यमयी घन्टा बाजे सर्वकाल।
बृहत्मृदङ्ग वाद्य परम रसाल॥
विशाल ललाटे शोभे तिलक उज्ज्वल।
गल देशे तुलसी माला करे झलमल॥
आजानुलम्बित बाहू दीर्घ कलेवर।
तप्त काञ्चन-बरण परम सुन्दर॥
ललित-लावण्य मुखे स्नेहभरा हासी।
अङ्ग कान्ति शोभे जैछे नित्य पूर्ण शशी॥
यति धर्मे परिधाने अरुण वसन।
मुक्त कैल मेघावृत गौड़ीय गगन॥
भकति-कुसुमे कत कुञ्ज विरचित।
सौन्दर्ये-सौरभे तार विश्व आमोदित॥
सेवादर्शे नरहरि चामर ढूलाय।
केशव अति आनन्दे निराजन गाय॥

परमाराध्य श्रील गुरुदेवने अपने आराध्य गुरुदेव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी एक सर्वाङ्ग सुन्दर आरतिके पदकी रचना की है।

जब इसका श्रीगौड़ीय पत्रिकामें प्रकाशन हुआ, तब उसे पढ़कर श्रील प्रभुपादके सारे शिष्य, प्रशिष्य आनन्दसे

झूम उठे। सभी लोग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपमें धन्यवाद देने लगे। यहाँ तक कि श्रीगौड़ीय मठोंके आचार्यगण अपनी-अपनी पत्रिकाओंमें श्रील गुरुदेवके नामको हटाकर प्रकाशन करनेका लोभ संवरण नहीं कर सके और तबसे श्रील प्रभुपादकी आरतिके समय श्रील गुरुदेवके द्वारा रचित इस आरति-कीर्तनका प्रचलन सर्वत्र हो गया।

जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके आश्रित प्रमुख त्रिदण्डि संन्यासियोंमेंसे प्रपूज्यचरण त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज अन्यतम थे। वे वेद, उपनिषद्, पुराण, श्रीमद्भागवत एवं गीता आदि शास्त्रोंमें पारङ्गत थे। सारस्वत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें इनका बड़ा ही आदर था। उन्होंने प्रभुपादकी आरतिको पढ़ते ही अपने झाड़ग्राम मेदिनीपुर स्थित मठसे तत्क्षणात् श्रीधाम नवद्वीपमें श्रील गुरुदेवके पास उपस्थित होकर उन्हें इसके लिए बधायी दी—

"महाराज! बड़े आश्चर्यकी बात है, हमलोग बहुत दिनोंसे गुरुगृहमें एक साथ रहते आये हैं, किन्तु निकट रहकर भी आज तक हमलोग आपको पहचान नहीं पाये। आपके हृदयमें इतनी गम्भीर गुरुनिष्ठा-विशुद्ध भक्ति है, अब तक हम इसकी गन्ध भी नहीं पा सके। अब तक हमने आपको प्रजाओंके शासन एवं सांसारिक कार्यों में ही सुदक्ष समझा था, किन्तु हमारी सारी धारणाएँ भूल सिद्ध हो रही हैं। आज सौभाग्यवश आपकी इस अनुपम गुरुनिष्ठा एवं अतुलनीय भक्ति-प्रतिभा हृदयङ्गम कर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपके हृदयमें श्रील प्रभुपाद स्वयं बैठकर आपके द्वारा शुद्धभक्तिके ऐसे सुन्दर, सुसिद्धान्तपूर्ण भावोंको प्रकाशित कर रहे हैं। आप धन्य हैं। हम आशा करते हैं कि भविष्यमें भी आप ऐसे-ऐसे अपूर्व कीर्तन पदों, स्तव-स्तुतियों, प्रबन्ध-निबन्धोंके द्वारा जगत्का अशेष कल्याण करेंगे।"

यहाँ इस आरतिके कतिपय पदोंके गम्भीर भावोंकी व्याख्या की जा रही है। 'योगमायापुर नित्य सेवादानकारी'— गोलोकके सर्वोच्च प्रकोष्ठका नाम व्रज, वृन्दावन अथवा गोकुल है। उसीके सन्निकट एक और प्रकोष्ठ है, जिसे श्वेतद्वीप या नवद्वीप कहते हैं। इस नवद्वीपधामका हृदयस्थल श्रीधाम मायापुर है, जहाँ श्रीमती राधिकाकी अङ्गकान्ति और

अन्तरङ्ग भावोंको अङ्गीकार कर स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें अपने नित्य परिकरोंके साथ नाना प्रकारके भावोंका आस्वादन करते हैं। किसी-किसी विरले सौभाग्यवान जीवोंको ही महावदान्य श्रीगौरलीलामें प्रवेश करनेका सौभाग्य होता है। श्रीकृष्णलीलाकी नयनमञ्जरी ही श्रीगौरलीलाके श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर हैं। इनके प्रणाममन्त्रमें इनका सिद्धस्वरूप अन्तर्निहित है—

श्रीवार्षभानवि-देवि-दयिताय कृपाब्धये।
कृष्ण-सम्बन्ध-विज्ञान-दायिने प्रभवे नमः॥

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कृष्णप्रिया वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाकी परम प्रियसखी, उन्नत उज्ज्वल मधुररसके मूर्तिमान विग्रह श्रीनयनमञ्जरी हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेपर ये करुणावरुणालय श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी दुर्लभ नित्यसेवाको प्रदान करते हैं। इसी प्रकार जो लोग श्रद्धापूर्वक श्रीरूपानुग प्रवर श्रील प्रभुपादकी आरति करते हैं या आरति दर्शन करते हैं, ये उन सबको ऐसी दुर्लभ गौरसेवा प्रदान करते हैं।

श्रील प्रभुपादकी यह आरति अनुपम, अलौकिक तथा असाधारण है। तथा अन्य आरतियोंसे सर्वथा विलक्षण है। उन्होंने नवद्वीपके नौ द्वीपोंमें तथा भारत एवं विश्वके कोने-कोनेमें, प्रधान-प्रधान नगरोंमें, पहाड़ों एवं जङ्गलोंके बीचमें सर्वत्र ही अपने शिष्य-प्रशिष्यको, ब्रह्मचारी एवं संन्यासियोंको भेजकर उन स्थानोंमें प्रचारकेन्द्र स्थापनकर शुद्धभक्तिका प्रचार किया है, जिसके आकर्षक सौरभसे बद्ध और मुक्त सभी प्रकारके जीव आकृष्ट होकर शुद्धभक्तिमें तत्पर हुए हैं और हो रहे हैं। साधारण अर्चनमें प्रथम श्रीविग्रहोंकी धूपसे आरति की जाती है, जिसकी सुगन्ध श्रीमन्दिर तक ही सीमित रहती है, किन्तु शुद्धभक्ति प्रचाररूप धूपकी सुगन्ध सारे विश्वको आमोदित एवं आकृष्ट करती है। इस प्रकार शुद्धभक्ति प्रचाररूप धूपका एक अलौकिक वैशिष्ट्य है। यदि सरस्वती प्रभुपादने विश्वमें शुद्धभक्तिका प्रचार नहीं किया होता, तो सारा विश्व शुद्धभक्ति-लाभसे सर्वथा वञ्चित रहता और इनका कल्याण नहीं होता। पश्चिम बङ्गाल तथा भारतके अन्य प्रान्तोंके लोग भी शुद्धभक्ति अर्थात् रागानुग

और विशेषतः रूपानुगभक्तिसे सर्वथा वञ्चित रह जाते। भक्ति प्रचारके लिए इन्होंने भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन एवं विश्व भरमें वितरणकी जो व्यवस्था की है, वह अश्रुतपूर्व एवं अदृष्टपूर्व है। इसीके द्वारा इन्होंने जगत्में भक्तिक्रान्तिकी नयी लहर पैदा कर दी। भारतसे सुदूर प्राच्य एवं पाश्चात्य छोटे-बड़े सभी देशोमें, छोटे-छोटे बालकों, नवयुवकों, नवयुवतियों तथा वृद्धों—सभीको वैदिक संस्कृतिमें रङ्गे हुए, हाथोंमें जापमालिका, अङ्गोंमें तिलक, सिरपर शिखा धारण किये हुए, गलियों-गलियोंमें मृदङ्ग, करतालकी तालपर नृत्य करते हुए, सङ्कीर्तन करते हुए देखा जा सकता है। उन स्थानोंमें श्रीराधाकृष्ण, श्रीगौरनित्यानन्द, श्रीजगन्नाथ-बलदेव-सुभद्रा आदिके विशाल-विशाल श्रीमन्दिर देखे जा सकते हैं। यह सब कुछ इन्हीं महापुरुषका अवदान है।

श्रीविग्रहके अर्चनमें धूपके पश्चात् प्रज्ज्वलित दीपसे आरति उतारी जाती है। इस विशेष अर्चनमें भक्तिसिद्धान्त ही दीप हैं। भक्तिसिद्धान्त दस प्रकारके हैं—(१) आम्नाय वाक्य—गुरु-परम्परागत मान्य वेद आदि शास्त्र ही (श्रीमद्भागवत) सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं, (२) व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही परतत्त्व हैं, (३) वे सर्वशक्तिमान हैं, (४) वे अखिल रसामृतसिन्धु हैं, (५) मुक्त और बद्ध दोनों प्रकारके जीव ही उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं, (६) बद्धजीव मायाके अधीन होते हैं, (७) मुक्तजीव मायासे मुक्त होते हैं, (८) चित्-अचित् जगत् श्रीहरिका अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाश है, (९) भक्ति ही एकमात्र साधन है और (१०) कृष्णप्रीति ही एकमात्र साध्यवस्तु है। इन दस प्रकारके भक्तिसिद्धान्तरूप जड़ी-बूटियोंका रसनिर्यास ही घृत है, जिससे दीप प्रज्ज्वलित होता है। पाँच प्रकारके स्थायीभाव ही पञ्च महाप्रदीप हैं। इन प्रदीपोंमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर—ये पाँच प्रकारके रस ही पाँच प्रकारकी शिखाएँ हैं।

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—ये उन प्रज्ज्वलित शिखाओंकी किरणें हैं। इस अलौकिक पञ्चशिखा विशिष्ट प्रदीपकी महाज्योतिसे तीनों लोकोंका अज्ञान अथवा अविद्यारूप अन्धकार सदाके लिए दूर हो जाता है। इसके दर्शनसे कृष्ण विमुख जीवोंकी विमुखता दूर हो जाती है।

विमुखता ही दुर्मति है और यही अन्धकार है। इस विलक्षण दीपके प्रभावसे यह अविद्या सदाके लिए दूर हो जाती है। वर्तमान युगमें इस दीपको जलाया किसने? इस भक्तिसिद्धान्त दीपको प्रज्ज्वलित किया है—श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने।

(३) धूप और दीपके अनन्तर जलशङ्ख द्वारा आरति होती है। भक्तिका विनोदन ही (श्रील भक्ति विनोद ठाकुर) शङ्ख है। वह शङ्खजल भक्तिभगीरथ भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा प्रवाहित रूपानुगभक्तिप्रवाहका निर्मल एवं सुगन्धित जल है। इस शङ्खकी धारा (प्रवाह) तैलधारावत् अविच्छिन्न गतिसे नित्य-निरन्तर प्रवाहित हो रही है एवं भविष्यमें भी प्रवाहित होती रहेगी अर्थात् कभी भी यह भक्तिधारा रुद्ध नहीं होगी। इस जलशङ्खकी धाराके छीटोंसे अखिल विश्वके सौभाग्यवान जीव अभिषिक्त होकर भगवत्-रससे अनुप्लावित होते रहेंगे।

(४) श्रीविग्रह-अर्चनमें घण्टाका बहुत महत्व है। धूप, दीप आदिके द्वारा आरति करते समय घण्टाका बजाना अत्यन्त आवश्यक है। इस विलक्षण आरतिमें सर्ववाद्यमयी घण्टा भी सर्वथा विलक्षण है, जो सदैव नित्यकाल बजता रहता है। वीर्यवती हरिकथा ही यह अलौकिक घण्टा है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरका सम्पूर्ण जीवन हरिकथामय रहा है। दूसरे शब्दोंमें श्रील सरस्वती ठाकुर हरिकथाके मूर्तिमान विग्रह थे। पल भरके लिए भी उनकी हरिकथा नहीं रुकती थी। अबोध बालकों, पेड-पौधों तकको भी देखकर इनकी हरिकथा अपने आप प्रवाहित होने लगती थी। उनकी हरिकथा इतनी ओजस्विनी एवं प्रभावशालिनी होती थी कि कोई भी श्रोता साथ-ही-साथ भक्तिसे अनुप्राणित हो जाता था।

अर्चनके साथ कीर्तन होना अत्यन्त आवश्यक है। श्रील जीव गोस्वामीने भक्तिसन्दर्भमें कहा है—**'यद्यप्यन्या भक्ति कलौ कर्त्तव्या तदा कीर्तनाख्या भक्ति संयोगेनैव।'** अर्थात् यदि कोई भक्तिके अन्य अङ्गोंका अनुशीलन करता है, तो उसे हरिसङ्कीर्तनके सहयोगके साथ ही करना चाहिये अन्यथा कलियुगमें सङ्कीर्तनके अतिरिक्त अकेले साधन किये जानेपर भी फलप्राप्ति नहीं होती। अतः अर्चनके साथ कीर्तन

होना अत्यावश्यक है। सङ्कीर्तन भी नाम, रूप, गुण, लीला, कीर्तन आदिके भेदसे विभिन्न प्रकारका होता है। इनमेंसे नामकीर्तन सर्वश्रेष्ठ है—तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नामसङ्कीर्तन। सङ्कीर्तनमें मृदङ्ग वाद्यका होना भी आवश्यक है। श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रवर्तित आरतिमें बृहद्-मृदङ्गका योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मुद्रण-यन्त्र ही यह बृहद्-मृदङ्ग है। साधारण मृदङ्गकी ध्वनि बहुत सीमित होती है। किन्तु बृहद्-मृदङ्ग—मुद्रण-यन्त्रसे प्रकाशित भक्तिग्रन्थ विश्वके कोने-कोने में पहुँचकर साधकभक्तोंके हृदयमें प्रवेशकर उन्हें उन्मत्तकर हरिनाम-सङ्कीर्तनमें नृत्य कराने लगता है। इस बृहद्-मृदङ्गकी ध्वनि कभी भी बन्द नहीं होती, सदैव भक्तोंके हृदयमें उदित होकर उन्हें अनुप्राणित करती रहती है। इस बृहद्-मृदङ्गकी स्थापना करनेवाले प्रभुपादकी आरति जययुक्त हो।

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव इस आरति-कीर्त्तनमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अप्राकृत श्रीअङ्गोंके अलौकिक सौन्दर्यका वर्णन कर रहे हैं—यद्यपि मदीय परमाराध्यतम श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद श्रीमती राधिकाकी परमप्रिय श्रीनयनमञ्जरी हैं, किन्तु इस भौम जगत्में दीनतावश अपना नाम श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रकाशकर अपने पूर्व नाम आदि स्वरूपको आच्छादितकर तृणादपि सुनीचका आदर्श दिखलाया है। इनके विशाल ललाटपर उर्ध्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित हो रहा है। इनके सुन्दर गलेमें त्रिकण्ठी तुलसीमाला सदैव झलमल-झलमल करती रहती है।

आजानुलम्बित भुजाएँ, सुगठित सुन्दर अङ्ग प्रत्यङ्गयुक्त दीर्घ कलेवर, स्वर्णकान्तिको भी पराभूत करनेवाली श्रीअङ्गकान्ति इनके महापुरुष होनेकी घोषणा कर रही हैं। क्योंकि ये सब महापुरुषोंके विशेष लक्षण हैं। इनके ललित लावण्य अधरोंमें स्नेहकी मुस्कान सदा खेलती रहती है। उनके यतिधर्मके अनुसार अङ्गीकार किये हुए डोर-कौपीन, बहिर्वास एवं उत्तरीय आदि गैरिक वस्त्रोंकी उज्ज्वल ज्योतिने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एवं बलदेव विद्याभूषणके पश्चात् गौड़ीयगगनमें छाये हुए मेघोंके द्वारा उत्पन्न घने अन्धकारको समाप्त कर दिया है। इन्होंने देश-विदेशमें सर्वत्र

ही शुद्धभक्तिकेन्द्रोंका स्थापन किया है। ये केन्द्र मानो भक्तिलताके पुष्पोंसे निर्मित श्रीराधाकृष्णके विलासकुञ्ज हैं, जिसके सौन्दर्य एवं सुगन्धसे सारा विश्व अमोदित हो रहा है। श्रीमायापुरधाममें श्रील प्रभुपादकी यह आरति नित्यकाल विराजमान है। उनके परमप्रिय नरहरि सेवाविग्रह प्रभु श्रील प्रभुपादको चामर वीजन कर रहे हैं। यह श्रीकेशव आनन्दमें विभोर आरति-कीर्तन कर रहा है।

श्रील गुरुदेवके द्वारा रचित इस सुललित आरति-कीर्तनका पद आज सर्वत्र गौड़ीय वैष्णवजन प्रीतिपूर्वक गान करते हैं।

* * *

श्रील प्रभुपाद-वन्दना

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्ण-प्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति-नामिने॥
श्रीवार्षभानवी-देवी-दयिताय कृपाब्धये।
कृष्ण-सम्बन्ध-विज्ञान-दायिने प्रभवे नमः॥
माधुर्योज्ज्वल-प्रेमाढ्य-श्रीरूपानुग-भक्तिद।
श्रीगौर-करुणा-शक्ति-विग्रहाय नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते गौर-वाणी-श्रीमूर्तये दीन-तारिणे।
रूपानुग-विरुद्धाऽपसिद्धान्त-ध्वान्त-हारिणे॥

कृष्ण-सम्बन्ध-विज्ञानके दाता, कृष्णके प्रिय, श्रीवार्षभानवीदेवी राधिकाके प्रियपात्र, इस भूतलपर अवतीर्ण ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी नामक कृपा-वारिधि प्रभुकी वन्दना करता हूँ। जो माधुर्यके द्वारा उज्ज्वलीकृत, प्रेमपूर्ण, श्रीरूपानुग-भक्ति-दानकारी तथा श्रीगौरांग-महाप्रभुकी करुणा-शक्तिके विग्रह-स्वरूप हैं, उन सरस्वती ठाकुरको मैं पुनः-पुनः नमस्कार करता हैं। जो गौर-वाणीके श्रीमूर्ति-स्वरूप, दीनजनोंके त्राण-कर्ता और श्रीरूपानुग विचारके विरुद्ध कुसिद्धान्त-रूप अन्धकारका विनाश करने वाले हैं, उन श्रील सरस्वती ठाकुरको नमस्कार करता हूँ।

* * *
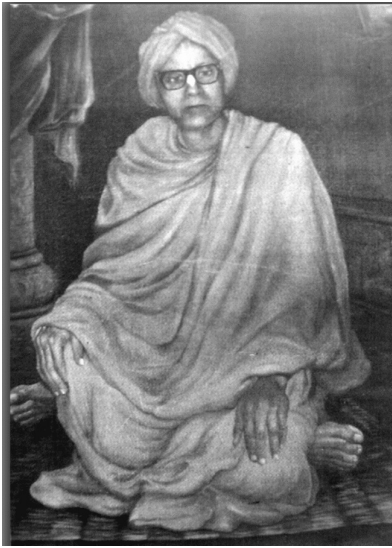
श्रील भक्तिमयूख भागवत गोस्वामी महाराज
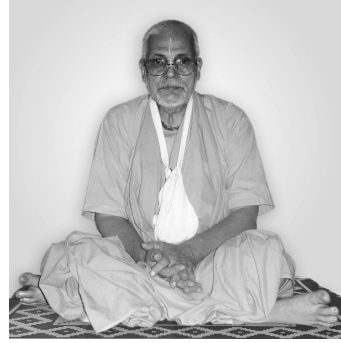
नित्य-लीला-प्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत
श्रीश्रीमद्भक्तिमयूख भागवत
गोस्वामी महाराज

नित्य-लीला-प्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत
श्रीश्रीमद्भक्तिविज्ञान
भारती गोस्वामी महाराज

[08 जनवरी, 2024 भारत के वृन्दावन में श्रील भक्तिमयूख भागवत गोस्वामी महाराज का तिरोभाव-दिवस था। श्रील भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज द्वारा 19 दिसंबर 2014 और 25 दिसंबर 2016 को उसी तिथि के उपलक्ष में परिवेषित कथा का भावानुवाद निम्नलिखित हैं। **संपादकों का योगदान**—सामग्री के प्रवाह को सुविधाजनक बनाने के लिए वर्गाकार कोष्ठकों में अतिरिक्त पाठ शामिल किया गया है।]

आज विशेष तिथि है। यह श्रील भक्तिमयूख भागवत गोस्वामी महाराज की तिरोभाव तिथि है। श्रील भक्तिभूदेव श्रौति गोस्वामी महाराज से संन्यास लेने से पहले उनका नाम रूपविलास दास था। उनका साहित्यिक योगदान मठ में शामिल होने के बाद, श्रीरूपविलास दास ने संपादकीय विभाग में सेवा की। **उन्होंने श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव के उपरांत श्रील प्रभुपाद के 'उपदेशामृत—प्रश्न और उत्तर' को दो खंडों में संपादित और प्रकाशित किया। इस पुस्तक को**

पढ़ने से हर व्यक्ति को अपने सभी [भक्ति-संबंधी] प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे।

उन्होंने श्रील नरोत्तम दास ठाकुर की 'प्रार्थना' और 'श्री प्रेम-भक्ति चंद्रिका' पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका प्रकाशित की। उन्होंने 'मंत्रार्थ दीपिका' (मंत्रों की व्याख्या), 'श्री चैतन्य-चरितामृत', 'वेदान्त-सूत्र', 'गुरु-सेवा' और कई अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित कीं। उन्होंने हमारे मुखपत्र 'चैतन्य-वाणी' के लिए लेखों की कई श्रृंखलाएँ भी लिखीं।

श्रील प्रभुपाद में निष्ठा

श्रील प्रभुपाद की प्रत्यक्ष उपस्थिति के दौरान, यदि ब्रह्मचारियों के परिवार के कोई सदस्य उन्हें वापस घर ले जाने के लिए मठ में आते, तो उन्हें श्रीरूपविलास दास के पास भेजा जाता, जो उन्हें विश्वास दिलाकर समझाते थे [कि 'उनके बेटों के लिए मठ में रहना फायदेमंद है']। जब उनके अपने परिवार के लोग उन्हें लेने आए, तो बाकी लोगों ने कहा, "अगर प्रभुपाद कहते हैं, तो वे वापस जा सकते हैं।" उस समय उन्होंने कहा, "मैं प्रभुपाद का निर्णय स्वीकार करूंगा, लेकिन मैं ऐसा कोई निर्णय स्वीकार नहीं कर सकता जो मुझे उनकी सेवा से दूर रखे।" यह उनकी विशेषता थी। मुझे उनका रुख बेहद उल्लेखनीय लगा।

बाद में, [जब उन्होंने अपना मठ स्थापित किया] श्रील भक्तिमयूख भागवत गोस्वामी महाराज, श्रील प्रभुपाद की सेवा के लिए उनके जन्म स्थान, जगन्नाथ-पुरी स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में भी अवश्य ही कुछ दान भेजते थे। श्रील प्रभुपाद की सेवा में उनकी ऐसी निष्ठा थी।

अपने निष्कलंक आचरण द्वारा एकचक्रा में गलतफहमी (मिथ्याबोध अथवा वैमनस्य) को दूर करना

नित्यानंद प्रभु की जन्मस्थली—'एकचक्रा' में यह दुष्प्रचार किया गया कि गौड़ीय मठ श्रीनित्यानंद प्रभु की पूजा के विरुद्ध है और इसलिए वह सिद्धान्त (स्थापित शास्त्रीय मतों अथवा तत्त्वों) के विरुद्ध कार्य करता है।

लेकिन जब श्रील भागवत महाराज, जो स्वयं एकचक्रा में जन्मे एक ब्राह्मण थे, मंदिर में आये, तो उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र हटाकर अर्चविग्रह को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया और नित्यानंद प्रभु का महिमामंडन करते हुए उनका प्रणाम मंत्र कहा। पुजारी यह [स्नेहपूर्ण और श्रद्धापूर्ण भाव] देखकर चकित रह गये। उन्होंने सोचा, "यहाँ जो लोग श्रीनित्यानंद की पूजा करते हैं, वे भी इस तरह से प्रणाम नहीं करते! यह कैसे कहा जा सकता है कि गौड़ीय मठ नित्यानंद प्रभु का सम्मान नहीं करता है?" श्रील भागवत महाराज ने एकचक्रा के नजदीक एक मठ भी स्थापित किया। धीरे-धीरे, यह ग़लतफ़हमी श्रील भागवत महाराज और श्रील प्रभुपाद के अन्य शिष्यों के त्रुटिहीन उपदेश (आचरण) से दूर हो गई।

एक सेवा अवसर

मुझे श्रील भागवत महाराज की सेवा करने का अवसर केवल एक बार मिला। वे अपनी वृद्धावस्था में मायापुर की यात्रा पर हमारे मठ में रुके थे। वह दर्शन के लिए योगपीठ, श्रीचैतन्य मठ आदि स्थानों पर गए। श्रील भक्तिकुसुम श्रमण गोस्वामी महाराज श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में 'पत्रिका-विभाग' में कार्यरत थे, इसलिए श्रील भागवत महाराज ने उनके साथ भगवान् का प्रसाद स्वीकार किया। जो कुछ भी भगवद्-प्रसाद परोसा जाता था, उसे चखना उसका नियम था। हमने उनके लिए असम से लाए हुए एक किस्म के चावल का प्रसाद भी तैयार किया था, जो बहुत स्वादिष्ट और बेहतरीन गुणवत्ता वाला था। उन्होंने उस चावल-प्रसाद की बहुत तारीफ की और पूछा, "यह आपको कहाँ से मिला? मैंने पहले कभी ऐसा चावल-प्रसाद नहीं चखा!"

वृन्दावन की यात्रा के दौरान वे हमारे मठ में रुके थे और प्रतिदिन दर्शन के लिए वहाँ से जाते थे।

वैष्णवों की दोनों ही तिथियाँ अर्थात् आविर्भाव-दिन और तिरोभाव-दिन समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। यहाँ तक कि किसी वैष्णव के नाम का स्मरण करना भी उनकी

सेवा करने के समान है। और यही हमारे मंगल का कारण बन जाता है। इसीलिए उनकी [आविर्भाव एवं तिरोभाव] तिथियों पर उनका महिमामंडन न करना अपराध है। यदि आप उन वैष्णवों के [पावन चरित्र के] बारे में कुछ भी नहीं जानते तो उनके पवित्र नाम का उच्चारण करने से भी सभी शुभ-फल की [अनायास ही] प्राप्ति हो जाती है।

* * *

विनोदविहारी इन सारे मठ एवं प्रचारकेन्द्रोंकी व्यवस्था करेगा।

श्रीगौरजन्मोत्सवके दो-एक दिन बाद श्रील प्रभुपाद उपस्थित समुदायमें अपनी ओजस्विनी कथाका परिवेशन कर रहे थे। प्रसङ्गवशतः उन्होंने श्रीनवद्वीपधामके नौ द्वीपोंमें एक-एक मठ स्थापन, बङ्गाल एवं भारतके विभिन्न प्रसिद्ध नगरोंमें श्रीगौड़ीय मठ और शुद्धभक्तिके प्रचारकेन्द्र तथा मुद्रणयन्त्रको स्थापनाकर उसके माध्यमसे भारतकी विभिन्न भाषाओंमें पारमार्थिक संवाद-पत्र द्वारा सर्वत्र शुद्ध भक्तिसिद्धान्तोंके प्रचारका सङ्कल्प प्रकाश किया। श्रीयुता सरोजवासिनी देवी ऐसा सङ्कल्प जानकर बहुत प्रसन्न हुईं और श्रील प्रभुपादसे बोली—"अभी इस योगपीठमें ही आरतीके समय काँसर-घण्टा बजानेके लिए आवश्यकतानुसार ब्रह्मचारी नहीं हैं, फिर इतने मठोंकी व्यवस्था कैसे सम्पन्न होगी?" उस समय बालक विनोदविहारी पास ही बैठे हुए एकाग्रचित्तसे श्रील प्रभुपादकी हरिकथा सुन रहे थे। श्रील प्रभुपादने इस बालककी ओर अँगुली द्वारा निर्देश करते हुए कहा—"विनोदविहारी इन सारे मठ एवं प्रचारकेन्द्रोंकी व्यवस्था करेगा।" यह बात बादमें सत्य हुई। इसी बालकने श्रील प्रभुपादके आशीर्वादसे मूल श्रीगौड़ीय मठके तथा सारे शाखा मठोंका व्यवस्थापक (math superintendent) बनकर बड़े सुचारु रूपसे सबकी व्यवस्था सँभाली। यही नहीं श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाकर सम्पूर्ण भारत एवं विश्वमें गौड़ीय मठों और

भक्ति-प्रचारकेन्द्रोंकी स्थापना कर सर्वत्र शुद्धभक्तिका प्रचार किया।

* * *

श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय वैष्णव गुरु-परम्परा

श्रीकृष्ण मूल जगद्‌गुरु हैं। उनसे चतुर्मुख ब्रह्माके हृदयमें शुद्ध ज्ञान-विज्ञानरूपी भक्तिकी धारा प्रवाहित हुई। पुनः उनसे श्रीनारद, श्रीवेदव्यासको क्रमशः यह विद्या प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वेदव्यासजीकी परम्परामें क्रमानुसार श्रीमध्वाचार्य, श्रीपद्मनाभ, श्रीनृहरि, श्रीमाधव, श्रीअक्षोभ्य, श्रीजयतीर्थ, श्रीज्ञानसिन्धु, श्रीदयानिधि, श्रीविद्यानिधि, श्रीराजेन्द्र, श्रीजयधर्म, श्रीपुरुषोत्तमतीर्थ, श्रीब्रह्मण्यतीर्थ, श्रीव्यासतीर्थ तथा श्रीलक्ष्मीपतितीर्थ आचार्य हुए। पुनः लक्ष्मीपतिके शिष्य श्रीमाधवेन्द्रपुरी हुए और उनके शिष्य हुए श्रीईश्वरपुरी, श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीअद्वैताचार्य। जगद्‌गुरु श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने श्रीईश्वरपुरीका चरणाश्रयकर उन्हें धन्य किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय श्रीस्वरूप दामोदर हुए, उनके प्रिय श्रीरूप व सनातन गोस्वामी हुए। श्रीजीव व रघुनाथदास गोस्वामीने श्रीरूप गोस्वामीके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया। उन दोनोंके प्रिय पात्र श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी हुए। श्रील कविराज गोस्वामीके प्रिय नरोत्तम एवं उनके प्रिय श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर हुए। उनके कृपापात्र श्रीबलदेव विद्याभूषण तथा उनके प्रिय सार्वभौम जगन्नाथ दास बाबाजी महाराज हुए। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने उनके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण किया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके सबसे प्रिय महाभागवत श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी तथा उनके प्रियपात्र श्रीवार्षभानवी-दयितदास जगद्‌गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरजीने सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित व प्रचारित शुद्धाभक्ति (प्रेमाभक्ति) की धारा प्रवाहित की है। इन्हीं सरस्वती ठाकुरके प्रियतम कृपापात्रोंमें जगद्‌गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अन्यतम हैं। वे सभी श्रीहरि गौरसुन्दरके प्रिय परिकर हैं। हम उन्हींके उच्छिष्टकी कामना करते हैं।

जगत्पिता श्रीकृष्णसे आरम्भकर श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त 'प्रभुपाद' तक की भागवत गुरु-परम्परा ही उनकी वंश-परम्परा है।

एक समय १९४८ ई. में श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके समय मायापुरस्थित जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' के समाधि-पीठपर परमाराध्य श्रीलगुरुदेवने (ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने) महाविरहसे कातर होकर क्रन्दन करते-करते दीनतापूर्वक अपना परिचय प्रदान करते हुए कहा था—"स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण परम दयालु हैं। श्रीकृष्णाभिन्न गौरसुन्दर भी परम दयालु हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु दयाके मूर्तिमान विग्रह हैं। श्रीमन्महाप्रभुके परिकर षड्गोस्वामी अहैतुकी दयालु हैं—यह मैंने सुना है। उनके समयमें भी मैं किसी-न-किसी रूपमें अवश्य ही विद्यमान था। अत्यन्त घृणित एवं पापी समझकर किसीने हमारे प्रति करुणा नहीं की। किन्तु जिन्होंने मुझ जैसे विषयी-धुरन्धर, दुर्दान्त स्वभावविशिष्ट पतित अधमका केशाकर्षणकर अपने चरणकमलोंकी धूलिके समान बनाया, जो अपनी अहैतुकी करुणाके कारण ईश्वरसे भी श्रेष्ठ हैं, आज वे मुझे आत्मसात् करें।"

उपरोक्त वक्तव्यके माध्यमसे परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने जगत्पिता श्रीकृष्ण, श्रीशचीनन्दन गौरहरि, अखण्ड गुरुतत्त्व बलदेवाभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभु और उन सबके प्रिय परिकर जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' के साथ सम्बन्धका उल्लेखकर अपने वंशका परिचय दिया है। उन्होंने कहीं भी अपने लौकिक वंश-परम्पराका कोई उल्लेख नहीं किया है।

* * *

श्रील प्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्रश्न 226—हमारे लिए चिन्तनीय विषय क्या है?

उत्तर—जगत का कोई भी विषय हमारे लिए चिन्तनीय नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण ही शुद्ध सत्य वस्तु हैं। परिकरों के साथ वे सत्य वस्तु श्रीकृष्ण ही हमारे लिए चिन्तनीय विषय हैं।

प्रश्न 227—हमारा मंगल कैसे होगा?

उत्तर—सपरिकर श्रीगौरसुन्दर ही हमारे लिए पूज्य वस्तु हैं। भक्तों को छोड़कर भगवान की सेवा पूजा नहीं होती। गुरु-वैष्णवों की सेवा के अतिरिक्त जीव के मंगल का अन्य कोई उपाय नहीं है। गुरु-वैष्णवों के अनुकरण के द्वारा जीवों का कल्याण नहीं होता, बल्कि अनुसरण के द्वारा ही मंगल होता है। कृष्ण का अनुकरण जीव के लिए उचित नहीं है। कृष्ण का अनुकरण करने के चक्कर में आउल-बाउल आदि अपसम्प्रदायों की सृष्टि हुई है।

भगवान को पुकारने के अतिरिक्त गौरसुन्दर का अन्य उपदेश नहीं है, वैष्णवों का अन्य कृत्य नहीं है। एकमात्र मंगल जिस नामग्रहण से होता है, वह नामसंकीर्तन ही हमें अच्छा नहीं लग रहा है। अतः मंगल किस प्रकार होगा?

प्रश्न 228—गुरुदेव क्या वस्तु हैं?

उत्तर—गुरुदेव भगवान होने पर भी भगवान के प्रियतम हैं। हमारे लिए श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रीगुरुदेव की ही अधिक प्रयोजनीयता है। श्रीगौरसुन्दर समस्त गुरुओं के भी गुरु हैं। उन्होंने बताया कि गुरु भगवान से अभिन्न होने पर भी भगवान के भक्तों के प्रधानतत्व के रूप में गुरुतत्त्व का अवस्थान है। श्रीगुरुदेव कृष्ण के प्रेष्ठ तथा वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे भक्तराज—सेवक भगवान—सेवाविग्रह—आश्रयविग्रह हैं। वे कृष्ण की भाँति विषय विग्रह या भोक्ता-तत्त्व नहीं हैं।

प्रश्न 229—भगवान को कौन प्रदान कर सकते हैं?

उत्तर—जो सब समय अखण्ड वस्तु भगवान की सेवा करते हैं, उनके आनुगत्य के द्वारा ही जीव का मंगल होता है। वैष्णवगुरु की सेवा के द्वारा ही विष्णुसेवा प्राप्त होती है। श्रीगुरुदेव की सम्पत्ति साक्षात् कृष्ण हैं। यदि कृष्ण स्वयं अपने को ही प्रदान करें, तो भी उनका कुछ देना बाकी रह जाता है। किन्तु भगवान के भक्त सम्पूर्णरूप से भगवान को दे सकते हैं। उससे भगवान की कुछ भी क्षति नहीं होती हैं।

प्रश्न 230—क्या वैष्णव अकिञ्चन होते हैं?

उत्तर—अवश्य ही। वैष्णव कृष्ण के आश्रित हैं—कृष्ण के सेवक हैं। उनके हृदय में भगवान के सेवक अभिमान के अतिरिक्त अन्य कोई अभिमान नहीं होता। वे अकिञ्चन होते हैं, इस जगत की कोई भी वस्तु नहीं चाहते। इस जगत की कोई भी वस्तु उन्हें लुब्ध नहीं कर सकती। इस जगत या परजगत में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो कृष्ण के चरणकमलों के नखचन्द्र से अधिक लोभनीय हो। जब तक हम भगवान की सेवा के प्रति लुब्ध नहीं होते, तब तक समझना होगा कि मोहिनी माया ने बहुत से रूपों में हमें ग्रास कर रखा है, हम पर आक्रमण किया है।

प्रश्न 231—अवैष्णव कौन हैं?

उत्तर—जो नित्यकाल भगवान की सेवा करते हैं, वे वैष्णव हैं। जो विष्णु की सेवा नहीं करते, वे ही अवैष्णव हैं। उनके लिए भी विष्णु की सेवा करना उचित है।

जो विष्णु की कथाओं के अतिरिक्त अन्य कथाओं का श्रवण करते हैं एवं विष्णु के चिन्तन के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का चिन्तन करते हैं, जगत में खाने-पीने-रहने को ही जो धर्म मानते हैं, वे ही अवैष्णव हैं।

विष्णु की कथाओं का कीर्तन एवं श्रवण करना ही हमारा एकमात्र नित्य कृत्य है। गुरु-वैष्णवों के अनुगत रहना

ही हमारे लिए उचित है। विष्णु का प्रसाद ही हमारे लिए नित्य ग्रहणीय वस्तु है। इन सब सेवाओं से वञ्चित होकर यदि हम अन्य कार्यों में व्यस्त रहे, तो तब समझ लेना चाहिए कि हम लोग अवैष्णव हो गये हैं। और यदि हम लोग अवैष्णव हो गये तो हमारे सामने नाना प्रकार की विपत्तियाँ एवं नाना प्रकार के क्लेश उपस्थित हो जायेंगे। भगवान से विमुखता ही समस्त क्लेशों का एकमात्र मूल कारण है। भगवान की सेवा छोड़कर अन्यान्य कार्य करने के कारण ही हम कष्ट पा रहे हैं। स्वतन्त्रतावशतः भगवान की सेवा छोड़कर जिससे लोग मेरी सेवा करें, इस विषय में ही हम लोग चेष्टाशील हैं। ऐसी चेष्टा करते हुए हम कर्ता सज रहे हैं। मैं भगवान का सेवक हूँ, इस स्वरूप की उपलब्धि के अभाव के कारण ही ये सब विचार आते हैं —मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं द्रष्टा हूँ, मैं चालक हूँ। ये सब कुविचार ही हमें ग्रास कर रहे हैं। साधुओं के निकट जाकर ही समझा जा सकता है कि मैं कर्ता नहीं हूँ, किसी का सेव्य नहीं बल्कि भगवान का सेवक हूँ। भगवान ही मेरे एकमात्र सेव्य हैं। कर्ममार्ग में विचरण करने वाला व्यक्ति ही कर्ता है। हम सत्कर्म के द्वारा जगत में सबके प्रिय होना चाहते हैं। सांसारिक कर्तव्यों का यथासाध्य पालनकर आत्मीय स्वजनों की प्रीति को आकर्षित करने के लिए ही हम व्यस्त हैं। इससे हमारा मंगल नहीं होगा या हमें शान्ति प्राप्त नहीं होगी, संसार से मुक्ति नहीं होगी। इसीलिए भगवान के भक्त हमें कृपा पूर्वक बताते हैं कि भगवान की सेवा ही हमारा एकमात्र कर्तव्य है। हमारा ही नहीं अपितु देवता, पशु-पक्षी एवं मनुष्य आदि सभी का एकमात्र कर्तव्य है—भगवान की सेवा। किन्तु भक्तों की बातों पर ध्यान न देकर हम लोग सोच रहे हैं—हम पत्थर हुए हैं, तो पत्थर का कार्य ही हमारा है। पेड़ हुए हैं, तो पेड़ का कार्य फल देना है। पिता हुए हैं, तो पुत्र कन्याओं का पालन करना, उनकी पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था करना ही हमारा कर्तव्य है। जब हम मनुष्य हुए हैं, तो शिक्षित होना सभ्य होना, समाज का संस्कार करना तथा देश की उन्नति करना आदि हमारे बहुत से कार्य हैं। हम घर में

रहेंगे, कर्ता सजेंगे, लोग हमारा सम्मान करेंगे, हम मोटर में चढ़ेंगे, पुत्र–पुत्रियों का विवाह करेंगे इत्यादि असंख्य संकल्प हमारे हृदय में विद्यमान हैं। इसी का नाम ही अवैष्णवता—भगवद्विमुखता या माया की दासता है।

प्रश्न 232—विषय और आश्रय में क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—श्रीकृष्ण ही एकमात्र विषय हैं, अन्य सभी आश्रय हैं। आश्रय विषय से पृथक् या दूसरी वस्तु नहीं है। विषय और आश्रय के बीच सेव्य सेवक का सम्बन्ध हैं। विषय केवल एक है, किन्तु आश्रय या आश्रित बहुत हैं। श्रीकृष्ण ही वह अद्वितीय विषय या विषय–विग्रह हैं। आश्रय बहुत होने पर भी मूल आश्रयतत्त्व या आश्रयविग्रह पाँच हैं —मधुररस में श्रीवार्षभानवी (श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी), वात्सल्यरस में श्रीनन्द यशोदा, सख्यरस में श्रीसुबल आदि दास्यरस में रक्तक आदि एवं शान्तरस में गो, वेत्र (छड़ी) और वेणु इत्यादि। अन्य आश्रय या आश्रितगण इन पाँच मूल आश्रयतत्त्वों में से किसी न किसी के आनुगत्य में कृष्णसेवा करते हैं। जगत की बातों में जिनको समय नष्ट करने का अवसर नहीं है, वे लोग ही इन सभी बातों का मर्म समझ सकते है।

हमारी वर्तमान अवस्था में कृष्णप्रणयमूर्ति श्रीराधा का तत्त्व नहीं समझा जा सकता। श्रीवृषभानुनन्दिनी आश्रयजातीय कृष्णवस्तु हैं। जिस अप्राकृत धाम में चिद्विलास चमत्कारिता परिपूर्णरूप में विराजित है, श्रीराधिका उसमें सर्वश्रेष्ठ स्थान पर विराजित हैं। वे कृष्ण की सेवा करने के लिए कृष्ण के वक्ष पर आरोहण करती हैं, वे कृष्ण की सेवा करने के लिए कृष्ण की ताड़ना और भर्त्सना तक करती हैं। वे कृष्णसेवा के लिए जिनका लौल्य (लोभ) हो गया है, वे ही केवल शुद्धचित्त में इन सभी बातों का मर्म अनुभव कर सकते हैं।

प्रश्न 233—सर्वजनीन धर्म क्या है?

उत्तर—वर्तमान समय में धर्म या देशसेवा आदि के नाम से जो सभी कार्य जगत के लोगों के निकट बड़े

आदरणीय हैं और धर्म के रूप में माने जा रहे हैं, वे सब भगवद्-विमुख कर्म-ज्ञान-योग आदि की चेष्टाएँ नास्तिक-सम्प्रदाय की अक्षज (इन्द्रियों से उत्पन्न)—भोगमयी चेष्टा मात्र हैं; उन कार्यों में भगवान की सेवा की गन्ध भी नहीं है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के **'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'** श्लोक में सभी धर्मों का परित्यागकर भगवद्-आश्रयरूप धर्म को ग्रहण करने के लिए कहा है। किन्तु भगवान का उस साक्षात् आदेश और उपदेश का लंघनकर 'सर्वधर्म समन्वय' आदि नाम देकर भगवद्-बहिर्मुख नास्तिक सम्प्रदाय के लोग मनः कल्पित मत या मनोधर्म की सृष्टिकर स्वयं वञ्चित हो रहे हैं। एवं अन्य लोगों को भी वञ्चित कर रहे हैं। जगत के सभी लोग यदि उसको सत्य के रूप में स्वीकार करते हैं, फिर भी वह वास्तव सत्य से बहुत दूर अवस्थित है। भगवद्विमुख अक्षज ज्ञानवादी की चेष्टा कदापि परम धर्म या सनातन धर्म नहीं है। अधोक्षज भगवान श्रीहरि में अहैतुकी और अप्रतिहता भक्ति या उनकी सेवा ही जीवमात्र का परम धर्म और एकमात्र सार्वजनीन धर्म है। यही आत्मधर्म, नित्यधर्म या सनातन धर्म है। पद्मपुराण में कहा गया है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम् ॥

पृथ्वी में जितने प्रकार की आराधनाएँ हैं, उनमें विष्णु की आराधना श्रेष्ठ है। विष्णु की आराधना से विष्णुभक्त की आराधना और भी श्रेष्ठ है। कृष्ण की आराधना से वृषभानुनन्दिनी की आराधना श्रेष्ठ है, नन्द-यशोदा की आराधना श्रेष्ठ हैं, श्रीदाम-सुदाम की आराधना श्रेष्ठ है, रक्तक-पत्रक की आराधना श्रेष्ठ है।

प्रश्न 234—श्रीगुरुपादपद्म में किस प्रकार की दृढ़ता होनी चाहिए?

उत्तर—वास्तव शिष्य श्रीगुरुपादपद्म को कृष्णप्रेष्ठ सेवक भगवान के रूप में जानते हैं। वे गुरुदेव को भगवान से किसी भी अंश में कम नहीं मानते हैं। निष्कपट शिष्य भगवान के समान गुरु की भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं,

सेवा करते हैं। जो लोग इस प्रकार गुरु की सेवा नहीं करते हैं, वे शिष्य स्थान से भ्रष्ट हो जाते हैं। गुरु को भगवान की प्रकाशमूर्ति और अभिन्न-विग्रह के रूप में दर्शन न करने पर कदापि शुद्धनाम नहीं होगा।

मैं सरलतापूर्वक गुरु के आनुगत्य में श्रीगुरु-गौरांग की सेवा करूँगा—भगवान के वाक्य मेरे गुरुदेव तक हैं—मैं उन वाक्यों का यथार्थ पालन करूँगा। पृथ्वी में किसी की बात सुनकर मैं गुरुजी की अवज्ञा नहीं करूँगा। कृष्णप्रेष्ठ श्रीगुरुदेव की आज्ञा का पालन करने के लिए यदि मुझे दाम्भिक होना पड़े, पशु होना पड़े, अनन्तकाल तक नरक में जाना पड़े, तो उसके लिए भी मैं प्रस्तुत हूँ। गुरु आज्ञा को छोड़कर मैं अन्य किसी की बात नहीं सुनूँगा, जगत के अन्य लोगों की चिन्ताधारा को गुरुपादपद्म के बल से मुक्का मारकर दूर हटा दूँगा। मेरे गुरुपादपद्म-पराग (श्रीगुरु की चरण रेणु) से एक कण फेंक देने पर जगत के करोड़ों लोगों का उद्धार हो जाएगा। ऐसा कोई पण्डित जगत में नहीं है, ऐसा कोई सद्विचार चौदह भुवनों में नहीं है, जो मेरे श्रीगुरुदेव के चरणकमलों की एक धूलकण से भी भारी हो जाये। वास्तव शिष्य में इस प्रकार सुदृढ़ विश्वास और दृढ़ता रहनी चाहिए।

प्रश्न 235—हमारे जैसे साधकों की चित्तवृत्ति या विचार कैसे होने चाहिए?

उत्तर—साधक अनर्थ को अर्थ प्राप्ति की पूर्वावस्था समझें। क्योंकि प्रतिकूल विषयसमूह अगले क्षण में ही भजन की अनुकूलता का प्रसव करते हैं। जगत में सारी वस्तुएँ कृष्णसेवा के उपकरण हैं—ऐसी सुबुद्धि होने पर भोगबुद्धि जीव को विव्रत नहीं कर सकती है। जिसमें कृष्ण का आनन्द है, उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना हमारा कर्त्तव्य हैं। यदि कृष्ण मुझे विमुख रखकर सुखी होते हैं, तो वही मेरे द्वारा वरणीय है। भगवान में ऐसी निर्भरता ही हमारी रक्षा करेगी। श्रवण कीर्तन प्रबल रूप से होने पर अनर्थसमूह अपने आप क्रमशः दूर हो जायेंगे। नित्यसिद्ध महाजन श्रीगुरुपादपद्म का अनुसरण ही हमारे मंगल का

एकमात्र सेतुबंध है—इसे दृढ़रूप से समझकर हमें भक्तिमार्ग में आगे बढ़ना होगा।

प्रश्न 236—कौन हमें कृष्ण को दे सकते हैं?

उत्तर—कृष्ण इस जगत की वस्तु नहीं हैं। कृष्ण ही जगदीश्वर हैं, कृष्ण ही परमपुरुष हैं, कृष्ण ही परमेश्वर हैं, कृष्ण ही परम सत्य हैं, कृष्ण ही वास्तव वस्तु हैं, कृष्ण ही एकमात्र उपास्य हैं, कृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं, कृष्ण ही एकमात्र आराध्य हैं। उन मायाधीश कृष्ण को इस जगत का कोई भी व्यक्ति नहीं दे सकता। कृष्ण भक्त की ही सम्पत्ति हैं। इसीलिए भक्त ही कृष्ण को दे सकते हैं। कृष्ण सेवोन्मुख व्यक्ति के शुद्धचित्त में ही उदित होते हैं।

कृष्ण के भक्त कृष्ण को द्वार-द्वार पर वितरण करते हैं, यही उनकी दया है। कृष्णभक्तगण जीवों के प्रति कृपायुक्त होकर उन लोगों के द्वार-द्वार पर जाकर साक्षात् कृष्ण—श्रीनाम का वितरण करते हैं। परम दयाल श्रीगौरांग महाप्रभु ने भी जीव की एकमात्र उपास्य वस्तु और वास्तव वस्तु श्रीनाम का सर्वत्र वितरण किया था। भाग्यक्रम से यदि हम किसी कृष्णभक्त का आश्रय प्राप्त कर सकते हैं, उनके चरणकमलों में निष्कपट आत्मनिवेदन कर सकते हैं, तो वे निश्चय ही हमें कृष्ण को प्रदान करेंगे।

प्रश्न 237—सद्‌गुरु क्या उपदेश देते हैं?

उत्तर—इस जगत में उपदेष्टाओं का अभाव नहीं है। जगत के लोग कहते हैं—यहाँ की जो आवश्यकताएँ हैं, पहले उनमें विशेषरूप से मन लगाओ। परन्तु उससे हित के विपरीत फल होता है—आवश्यकताओं की मात्रा केवल बढ़ती जाती है। सामयिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अनेक आवश्यकताओं के बीच में अनेक अभाव और असुविधाओं में डूबना पड़ता है।

इस जगत में आसक्ति के साथ वास या आसक्तिरहित होकर अति वैराग्य का प्रदर्शन, इन दोनों में से किसी से भी मंगल नहीं होने वाला। जगत में बहुत से ठग लोग साधु के वेष में जीवों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष

के लिए प्रेरितकर तथाकथित धार्मिक करने के लिए व्यस्त हैं। ऐसे ठगों के चंगुल से छुटकारा पाने के लिए चतुर होना आवश्यक है और चतुर होने के लिए श्रीचैतन्यदेव की बातों में मन को लगाना होगा।

देवताओं के गुरु बृहस्पति परामर्श देते हैं जिससे देवताओं के भोग में वृद्धि हो। बृहस्पति की बुद्धि की प्रखरता और धर्मोपदेश भोगवृद्धि के लिए हैं। मनुष्य-जाति में भी अनेक अच्छे-अच्छे लोग परामर्शदाता हैं। कुलपुरोहित, समाजपति, देशपति, आत्मीय स्वजन आदि जो समस्त परामर्श देते हैं, वह केवल मानव जाति की भोगवृद्धि के लिए। जबकि वशिष्ठ की भाँति कुलगुरु भी हैं, ये निवृत्त जीवन का परामर्श देते हैं। किन्तु वैष्णव-सद्‌गुरु एकमात्र हरिभजन के लिए ही परामर्श देते हैं। प्रवृत्ति या निवृत्ति उनके उपदेश की अन्तिम सीमा नहीं है। वे प्रत्येक जीव के चिरस्थायी मंगल के उपदेष्टा हैं।

प्रश्न 238—काम किस प्रकार जाएगा?

उत्तर—भगवत्-सेवोन्मुखता ही हमें भोगोन्मुखता से रक्षा कर सकती है। कृष्णसेवा-विमुखता का अन्य नाम 'काम' है। पूर्ण वस्तु की सेवा करना ही अपूर्ण अंश का एकमात्र कृत्य है। निष्काम कृष्णभक्त की सेवा ही काम के पंजे से निस्तार पाने की एकमात्र औषधि है। कृष्ण सेवक ही हमलोगों को कृष्ण भक्ति विरोधी काम से उद्धार करने में समर्थ हैं। अप्राकृत कामदेव श्रीकृष्ण की सेवोन्मुखता के अभाव में ही हमारी प्राकृत काम प्रवृत्ति है।

अप्राकृत कामदेव का इन्द्रिय तर्पण ही कृष्णदास जीव की नित्य वृत्ति है—यही सदाचार है। कृष्ण-प्रपत्ति या कृष्ण-सेवा ही कामबीज का ध्वंस करती है।

प्रश्न 239—भक्त किसको विपद मानते हैं?

उत्तर—जो लोग जागतिक अभाव, असुविधा और त्रिताप को विपद मानते हैं, वे धर्मार्थकामी या मोक्षकामी हो जाते हैं। भोगी और त्यागी—बुभुक्षु और मुमुक्षु दोनों ही स्व-स्व अपस्वार्थ पूर्ति के अभाव को ही विपद मानते हैं।

जबकि भगवद्-भक्त कृष्णसेवा में अर्थात् कृष्णेन्द्रिय-तर्पण में जिससे बाधा होती है, उसी को विपद समझते हैं। धर्मार्थकाम-चेष्टा और मोक्ष-चेष्टा में कृष्णेन्द्रिय-तर्पण में बाधा होती है, अतः वे (भक्तलोग) उन सभी विपत्तियों से निष्कृति चाहते हैं अर्थात् भगवान के भक्त भोगवाञ्छा और मोक्षवाञ्छा—दोनों से ही परित्राण की आकांक्षा करते हैं।

प्रश्न 240—क्या सरलता की विशेष आवश्यकता है?

उत्तर—हम लोगों को सरल होना ही पड़ेगा। कपटता, कुटिलता, परचर्चा का दृढ़ता से परित्याग करना होगा। बुद्धिहीनता या कुटिलता को सरलता कहने से नहीं चलेगा। क्योंकि True Sincerity (वास्तविक सरलता) और Seeming Sincerity (कृत्रिम सरलता) एवं True punctuality (अकृत्रिम समय निष्ठा) और Seeming punctuality (कृत्रिम समय निष्ठा) कदापि एक नहीं हो सकती। साधु और असाधु का विचार एक नहीं है। 24 घण्टों में 24 घण्टे भगवान की बातों में न रहकर अन्य बातों में जाने पर हरिभजन से छुट्टी लेनी पड़ेगी।

प्रश्न 241—क्या सेवा स्वयं करनी पड़ेगी?

उत्तर—हममें से प्रत्येक को अधोक्षज भगवान का सेवक बनना पड़ेगा। पुरोहित अथवा प्रतिनिधि के द्वारा सेवा कार्य नहीं होता है। किसी-किसी सम्प्रदाय में देखा जाता है कि एक व्यक्ति ने Spokesman होकर उपासना की, और अन्य सभी व्यक्ति खड़े रहे। इसको सेवा नहीं कहा जाएगा। आचार्य के अनुगत होकर अपने को सेवा में नियुक्त करना होगा। साधुसंग, नामकीर्तन, हरिकथा श्रवण, श्रीमूर्तिपूजा आदि द्वारा मंगल होगा, किन्तु इनका अभिनय करने से मंगल नहीं होगा। यदि आत्मसमर्पण न कर इन सभी कार्यों का अनुकरण किया जाता है, तो वह केवल अभिनय है।

कृष्ण की इच्छा से हमें जो अर्थ इत्यादि प्राप्त होंगे, उनको भगवत् सेवा में लगाना होगा। सेवा में कृपणता या शैथिल्य कर पैसा जमा करने पर असुविधा में पड़ जाएँगे।

मुझे अनेक लोग मठ-मन्दिर की एक पक्की

व्यवस्था करने के लिए कहते हैं। किन्तु मैं ऐसा कुछ भी नहीं करूँगा। यदि वास्तव में सेवोन्मुख प्राण हैं, यथार्थ शरणागति हैं, तब भगवत् कृपा के द्वारा ठाकुर-सेवा उत्तम रूप से चलती रहेगी एवं निर्भयता के साथ महाप्रभु की वाणी का प्रचार होगा, नहीं तो सब जहन्नुम में जाय।

स्व-पर-मंगल (अपने और दूसरों के मंगल) के लिए हमें तीव्र दृष्टि रखनी चाहिए। हम जगत में अधिक दिन नहीं रहेंगे, हरिकीर्तन और हरिसेवा करते-करते हमारा देहपात (शरीर त्याग) होने पर ही जीवन सार्थक होगा। परन्तु हम जगत में लकड़ी-पत्थर के मिस्त्री (कारीगर) होने नहीं आये हैं, हम श्रीचैतन्यदेव की वाणी के Peon (चपरासी) मात्र हैं।

प्रश्न 242—क्या गृहसेवा को भगवत् सेवा मानना भ्रांति है?

उत्तर—निश्चय ही। भोगागार गृह और हरिसेवामय मठ एक नहीं हैं। इसलिए गृहसेवा को भगवत् सेवा नहीं कहा जा सकता। गृहव्रतबुद्धि और हरिसेवा की प्रवृत्ति पृथक् हैं। हरिभजन कर पाने पर मठ और घर दोनों एक समान हैं। भजन न कर पाने पर दोनों स्थानों पर माया और मोह आकर हरिभजन में बाधा डालेंगे।

गृह सेवा को हरिसेवा सोचने पर मंगल की आशा नहीं की जा सकती। अनात्मीय वस्तु पिता-माता, स्त्री-पुत्र आदि के प्रति प्रीति और सेवा-बुद्धि रहने पर हरिसेवा कदापि सम्भव नहीं होती है। उसमें बँध जाने पर स्वजन-स्नेह भजनीय वस्तु हो जाएगा। 'कौन किसका पिता, कौन किसका पुत्र'—यह विवेक नष्ट हो जाने पर संसार दशा और अमंगल अनिवार्य है। दीक्षा ग्रहण के बाद भी यदि पिता, पुत्र, स्वदेश, स्त्री, जननी आदि हरिविमुख संग अनुकूल लगता है या उन लोगों की सेवा भगवत् सेवा लगती है, तब समझना चाहिए कि हम शुद्ध हरिभजन भूल गये हैं। इस प्रकार की भ्रान्ति और चित्त-चंचलता को छोड़कर कुछ समय Living Source (प्रकट साधु) का संग करना आवश्यक है। अन्यथा स्वजनासक्ति, पुत्रस्नेहपाश, पत्नी

सहवास सुख आदि विभिन्न विपज्जनक वस्तुएँ हमें हरिभजन से नित्यकाल के लिए अलग कर देंगी। तब संसार ही हमारा आकांक्षणीय हो जाएगा। असत् संग के प्रभाव में ही गृहसेवा में हरिसेवा का भ्रम हो जाता है। ऐसे जञ्जाल से उद्धार पाने के लिए कृष्णभक्तों का संग और शास्त्र-श्रवण विशेष आवश्यक है।

प्रश्न 243—God, अल्लाह और कृष्ण—इनमें क्या वैशिष्ट्य है?

उत्तर—The word God has got a very limited idea. We find the perfect and highest conception of theism in Krishna only. The word Allah means the greatest i.e. Possessor of a partial quality. It is an adjective. But Krishna is the source of all powers. He is the proper noun.

अर्थ—'गॉड' शब्द एक सीमित विचार हैं। हम आस्तिक्यवाद का पूर्ण और सर्वोच्च विचार केवल 'कृष्ण' में पाते हैं। 'अल्लाह' शब्द का अर्थ है महानतम अर्थात् आंशिक गुण के अधिकारी। यह शब्द एक विशेषण है। परन्तु कृष्ण समस्त शक्तियों के मूल हैं। वे ही वास्तव संज्ञा हैं।

प्रश्न 244—श्रीगुरुदेव अपने आश्रित को क्या देते हैं?

उत्तर—श्रीगुरुदेव आश्रित को वैकुण्ठनाम प्रदान करते हैं। वे भगवान के ही अभिन्न मूर्ति और सेवक विग्रह हैं। इसलिए उनको मनुष्य समझकर अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, अवज्ञा करने पर महा अपराध होता है। वैकुण्ठ-शब्द से वैकुण्ठ-शब्दी भगवान का भेद नहीं है। जो नाम, वही कृष्ण हैं—नाम और नामी अभिन्न हैं। वैकुण्ठनाम इस जगत की वस्तु नहीं हैं। वैकुण्ठनाम दृश्य वस्तु नहीं हैं, वे स्वयं द्रष्टा हैं।

कृष्णप्रेष्ठ सद्गुरु ही कृष्ण को दे सकते हैं। वैष्णवगुरु के निकट ही कृष्णकथा श्रवण का सुयोग प्राप्त

होता है। भक्त व्यतीत अन्य व्यक्ति भगवान की कथा नहीं कह सकते। कर्मी, ज्ञानी, योगी या जागतिक अध्यापक के निकट जाने पर माया की कथा श्रवण करनी होगी। ये लोग भगवान विष्णु का नित्य अस्तित्व और सच्चिदानन्द-विग्रहत्व स्वीकार नहीं करते। ये लोग भगवद् अवतार और आचार्यदेव में मर्त्यबुद्धि करते हैं (अर्थात् उनको साधारण मनुष्य समझते हैं)।

श्रीगुरुदेव अनुगत शिष्य को कृष्णनाम और कृष्णमन्त्र प्रदान करते हैं। जबतक गुरु में मर्त्यबुद्धि रहेगी, तबतक हरिनाम की कथा और महिमा नहीं समझी जा सकती। श्रीचैतन्यदेव को मनुष्य समझने से अनन्तकाल तक मंगल नहीं होगा। श्रीगुरुकृपा से श्रीगौरसुन्दर और ब्रजधाम का सन्धान प्राप्त होता है।

कृष्णमन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ है। कृष्णमन्त्र से अधिक श्रेष्ठ और असीम शक्तिशाली कुछ भी नहीं है। कृष्णमन्त्र में सिद्धि होने पर समस्त प्रकार के मनोधर्म बन्द हो जाते हैं।

श्रीराधाकुण्ड के तट पर श्रीगुरुदेव का नित्य कुञ्ज है। वहाँ उन्होंने सेवा के द्वारा कृष्ण को बाँध दिया है। श्रीगुरुदेव की कृपा से ही गिरिवर गोवर्धन को प्राप्त कर सकते हैं। कृष्ण ही अन्य मूर्ति में गोवर्धन हैं। मन के धर्म से युक्त होने पर गोवर्धन का दर्शन पत्थर के रूप में होता है। श्रीमती वार्षभानवी (वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिका) जिस स्थान पर क्रीड़ा करती हैं, वह जड़जगत की मिट्टी-कीचड़ से निर्मित वस्तु नहीं है, वह दिव्य चिन्तामणिमय हैं। श्रीश्री राधामाधव की अन्तरंग सेवा प्राप्ति की आशा जिनकी से मिलती है, वे ही श्रीगुरुदेव हैं।

श्रीगुरुदेव की कृपा से हमारे समस्त अमंगल नष्ट हो जाते हैं और सब प्रकार से मंगल होता है। मापने का धर्म या जड़नीति के द्वारा कृष्ण को कदापि नहीं जान सकते। एकमात्र केवला भक्ति के द्वारा उनको जान सकते हैं। यह भक्ति भक्तश्रेष्ठ श्रीगुरुदेव की कृपा से ही प्राप्त होती है।

एकमात्र कृष्णकथा ही मूल्यवान् है। गोलोक का पाथेय (पथ के लिए आवश्यकीय वस्तु) संग्रह करने के लिए कृष्णकथा ही सम्बल है। कृष्णकथा साक्षात् कृष्ण है।

कृष्णकथा के अतिरिक्त अन्य किसी कथा का मूल्य फूटीकौड़ी का भी नहीं है। इसलिए जगत में कृष्णकथा का विपुल प्रचार होना आवश्यक है। ब्रजवासी श्रीगुरुदेव के श्रीमुख से ही इस कृष्ण कथा के श्रवण का सौभाग्य मिलता है।

हमलोग वर्तमान कृष्ण की कथा का परित्यागकर हाड़मांस की थैली इस शरीर की चिन्ता में दिन प्रतिदिन बिता रहे हैं। इसलिए जड़ वस्तुओं के साथ हमारा परिचय हो रहा है, आत्मा या Soul के साथ साक्षात्कार नहीं हो रहा है।

प्रश्न 245—भक्तों के क्रियाकलापों को कौन समझ सकता है?

उत्तर—जो लोग निष्कपट होकर भगवद् भक्तों के आचरण और शिक्षा का अनुशीलन करते हैं, वे लोग ही दुर्ज्ञेय-चरित्र (जिनके चरित्र को जानना कठिन है) भक्तों की कृपा से उनके क्रियाकलापों को समझ सकते हैं। अन्य किसी उपाय से भगवद् भक्तों का चालचालन समझ नहीं सकते। अक्षज (इन्द्रियज) ज्ञान द्वारा वैष्णव का चरित्र कदापि नहीं समझ सकते। भक्त के बाह्य आचरणों से उनको सब समय पकड़ नहीं सकते। यदि सौभाग्य से हम सेवोन्मुख होकर भक्त के चरित्र को देखने का सुयोग प्राप्त करते हैं, तभी हमारा मंगल है। अक्षजज्ञान से मापने का धर्म जीव को असुविधा में डालता है।

प्रश्न 246—श्रीगुरुदेव के उपदेशों की आलोचना क्या प्रत्यह करनी चाहिए?

उत्तर—वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ हैं श्रीगुरुदेव। उन कृष्णप्रेष्ठ श्रीगुरुदेव के उपदेशों का श्रवण नित्यकाल करना चाहिए। प्रत्यह उनके उपदेशों की आलोचना और श्रवण न कर अन्य कर्म करने पर भयंकर दुःख को बुलावा देना होगा। गुरु-वैष्णवों का अनुकरण करना या असत्संग करना अनुचित है। उनका अनुसरण करना होगा। भगवान जिनके हृदय में वास करते हैं, उनका संग ही करणीय है। भक्त

और अभक्त, मुक्त और बद्ध, सिद्ध और असिद्ध एक नहीं हैं। जिस प्रकार असिद्ध (बिना पके हुए) चावल खाने से नहीं चलता है, चावल सिद्ध होने पर और कुछ शीतल होने पर खाने योग्य होता है, उसी प्रकार सिद्ध भक्तों का संग ही सबसे अधिक आवश्यक और मंगलजनक है।

प्रश्न 247—श्रीगुरुदेव को प्रभुपाद या विष्णुपाद क्यों कहा जाता है?

उत्तर—कृष्णतत्त्व को जाननेवाले आश्रयविग्रह श्रीगुरुदेव शिष्य के लिए साक्षात् कृष्णचैतन्य या हरिस्वरूप होने के कारण उनको विष्णुपाद या प्रभुपाद कहा जाता है।

प्रश्न 248—किससे चिरस्थायी मंगल होगा?

उत्तर—जिस दिन हम भोगपरक और त्यागपरक हो जाते हैं, उसी दिन यथेष्ट लाभवान् हुआ ऐसा सोचने पर भी हमारा वह लाभ अति कम समय के लिए रहता है, किन्तु गुरु-वैष्णव की सेवा चिरस्थायी हैं। इसी से नित्य मंगल होता है।

विष्णुसेवा गुरु-वैष्णवों की सेवा द्वारा ही होती है। यद्यपि प्राक्तन (पूर्व) कर्मदोष से मैं भोगी हो गया हूँ, फिर भी एकमात्र गुरु-वैष्णवों की कृपा ही मुझे समझा सकती है कि भोग और त्याग आत्मधर्म नहीं, बल्कि मनोधर्म हैं। यह सत्य है कि मैं अयोग्य हूँ, किन्तु यदि मैं गुरु-वैष्णवों की कुछ सेवा कर सकूँ, तो योग्य हो सकता हूँ। गुरु-वैष्णवों की सेवा के अतिरिक्त योग्य बनने का या मंगल का अन्य कोई उपाय नहीं है। विष्णुसेवा किस प्रकार की जाती वह हम प्रारम्भ में नहीं जान सकते। तारतम्य का विचार करने पर हम समझ सकते हैं कि विष्णुसेवा से विष्णु भक्तों की सेवा सब प्रकार से बड़ी है। विष्णु की खोज इस जगत में किसी भी प्रकार से न कर पाने पर भी जो लोग विष्णु की सेवा करते हैं, उनकी सेवा करने से किस प्रकार विष्णु की सेवा की जाती है, वह जान सकता हूँ।

इन्द्रियज ज्ञान के द्वारा भगवान की सेवा की बात जानना सम्भव नहीं है, इसलिए हताश होने की जरूरत नहीं

है। भगवान अधोक्षज वस्तु हैं। जो लोग अधोक्षज वस्तु की सेवा में लगे हुए हैं, वे भी अधोक्षज वस्तु हैं। अतः उनके लिए अधोक्षज की सेवा अज्ञेय, दुर्ज्ञेय या परोक्ष नहीं है; अधोक्षज सेवा अधोक्षज भगवत् सेवकों की सेवा प्रस्फुटित आत्मा का प्रत्यक्ष विषय है।

प्रश्न 249—कर्म क्या है?

उत्तर—अपनी सुख सुविधाओं के लिए और दूसरों की सुख सुविधाओं के लिए जो किया जाता है, वही कर्म है। उसमें कृष्ण के सुख के अनुसन्धान की कोई बात नहीं होती। अपने और दूसरे के सुख का अनुसन्धान ही उसका तात्पर्य या उद्देश्य है। जबकि कृष्णसुखानुसन्धान का नाम है भक्ति।

यह संसार साधारण लोगों के लिए कर्मक्षेत्र है। किन्तु भक्तों के लिए यह संसार भक्तिसाधनक्षेत्र है। कर्तृत्वाभिमान से संसार में जो कुछ किया जाता है, वह कर्म है। जबकि गुरु-कृष्णदास अभिमान से भगवत् चालित होकर भगवान का कार्य समझकर जो किया जाता है, वह भक्ति है।

कर्म कब तक करणीय है? इस प्रश्न के उत्तर में शास्त्र कहते हैं—

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथा-श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

जब तक कर्म के प्रति निर्वेद या विरक्ति नहीं आ जाती, तब तक कर्म करना होगा। अथवा सौभाग्य से साधुसंग के फल स्वरूप यदि किसी की भगवत् कथा में श्रद्धा या रुचि हो जाती है, तब उसे और कर्म नहीं करना पड़ेगा। इन दोनों लक्षणों में से जिसमें एक भी लक्षण दिखाई न दे, उसे संसार क्षेत्र में कर्म करना ही होगा।

हरिकथा में श्रद्धा या रुचि ही भक्ति का मूल है। 'हरिकथा हि केवलं परमं श्रेयः' ऐसा दृढ़ विश्वास ही श्रद्धा या हरिकथा में रुचि का लक्षण है।

जिसकी जिसमें श्रद्धा और रुचि है, वही उसका मुख्य या प्रधान कार्य है। ऐसी अवस्था में बलवान् साधु

का संग करना विशेष आवश्यक है। इसके अतिरिक्त कर्मोन्मुखता या भोगोन्मुखता छोड़कर सेवोन्मुखता प्राप्त करने का या सेवोन्मुख होने का अन्य कोई मार्ग नहीं है। अतः व्यस्त, चञ्चल या हताश न होकर Living Source (प्रकटित भक्त) से वीर्यवती हरिकथा सुनकर उसे अपने जीवन में पालन करने के लिए अपनी क्षमता के अनुसार यत्न करना ही बुद्धिमत्ता या चातुर्य है। यही शास्त्र कहते हैं—

ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।
सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः॥

अर्थात् बुद्धिमान् व्यक्ति को दुःसंग का त्यागकर सत्संग करना चाहिए। सन्तपुरुष अपनी वाणी के द्वारा मन की आसक्तियों को काट डालते हैं।

साधुसंग–कृपा किम्वा कृष्णेर कृपाय।
कामादि दुःसंग छाड़ि शुद्धभक्ति पाय॥

अर्थात् साधुसंग की कृपा या कृष्ण की कृपा से व्यक्ति दुःसंग और काम आदि का त्यागकर शुद्धभक्ति प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न 250—अनुक्षण (निरन्तर) हरिभजन किस प्रकार कर सकते हैं?

उत्तर—अनुक्षण भजनरत जीवन्त आदर्श (महापुरुष) के सम्मुख सब समय रहने से सर्वक्षण हरिभजन करने का सौभाग्य उन महापुरुष के संग और कृपा से सहज ही हो जाएगा। वही शास्त्र कहते हैं—

निजाभीष्ट कृष्णप्रेष्ठ पाछे त' लागिया।
निरन्तर कृष्ण भजे अन्तर्मना हैया ॥

अर्थात् निरन्तर हरिभजन करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह कृष्णप्रेष्ठ व्यक्तियों का अनुगामी होकर निरन्तर अन्तर्मना होकर कृष्ण का भजन करे।

महाजनों ने भी गाया है—

कृष्ण से तोमार, कृष्ण दिते पार,
तोमार शकति आछे।
आमि त' कांगाल, 'कृष्ण कृष्ण' बलि',
धाइ तव पाछे पाछे॥

अर्थात् हे वैष्णव ठाकुर! कृष्ण आपके हैं, कृष्ण को देने की शक्ति आप में है। इसलिए मैं कंगाल, कृष्ण को पाने की आशा से आपके पीछे कृष्ण-कृष्ण कहते हुए दौड़ रहा हूँ।

प्रश्न 251—क्या हरिकीर्तन अनुक्षण (निरन्तर) करणीय है?

उत्तर—अवश्य ही। महाप्रभु ने हमें शिक्षा दी है —**"कीर्तनीयः सदा हरिः"।** सदा शब्द से काल में कोई व्यवधान (अन्तर) नहीं है, यह विदित होता है। मनुष्य का मुहूर्त्त के लिए भी अन्य कोई कार्य नहीं है—अन्य कोई कर्त्तव्य नहीं है—हरिकीर्तन को छोड़कर, यहाँ तक कि पशुपक्षियों के पास भी हरिकीर्तन करना होगा। ऐसा करते समय यदि अनभिज्ञ लोग हमें उन्मत्त कहें, नासमझ कहें, उसमें हमारी कोई हानि नहीं है, श्रीगुरु गौरांग का आदेश सिर पर धारण कर हम भगवान की कथा का ही निरन्तर कीर्तन करेंगे। जगत के लोग प्रत्यह ग्राम्यकथा सुनने के लिए ग्राम्य-वार्तावह (समाचार पत्र) पढ़ते हैं, ग्राम्यवार्ता के वातावरण ने उन लोगों को सब समय घेर रखा है। हम कह रहे हैं—सभी लोग नित्यप्रति चैतन्य-कथा का श्रवण करें, आपस में मिलने पर चैतन्य कथा का आलाप करें, अनुक्षण चैतन्यकथा के परिवेश के अन्दर श्वास-प्रश्वास ग्रहण करें, जिससे जगत में चैतन्यकथा के अतिरिक्त अचैतन्य-कथा न रहे।

चैतन्यानुशीलन को अनुक्षण संजीवित रखने के लिए हम लोगों को अनुक्षण चैतन्य की कथा के अन्दर रहना होगा। आज अचैतन्यवादी अनेक लोगों द्वारा बाधा देने पर भी बहुत अर्थव्यय स्वीकार कर प्रतिदिन निरन्तर हरिकथा कीर्तन की व्यवस्था हो रही है। अचैतन्य विश्व इस प्रकार अनर्थरोग से प्रपीड़ित हुआ है, ऐसी अचेतना के नशे में ढका हुआ है कि वे लोग मंगल की औषधि ग्रहण नहीं करेंगे, और बाकी सब कार्य करेंगे, किसी भी प्रकार से चैतन्यकथा सुनना नहीं चाहेंगे। प्राण, अर्थ, बुद्धि सब खर्चकर अचैतन्य कथा सुनेंगे अपने अमंगल को स्वयं बुला

लायेंगे, कुपथ्य खा-खाकर रोग को अधिक बढ़ायेंगे, अन्त में नरक चले जायेंगे, फिर भी रोज-रोज थोड़ी-सी चैतन्य कथा सुनने पर बहुत मंगल हो सकता है, बहुत सुविधा हो सकती है, परन्तु वही मंगल वही सुविधा किसी भी प्रकार से नहीं लेंगे; किसी भी प्रकार से मंगल नहीं लूँगा—वे लोग जैसे इसकी प्रतिज्ञा कर बैठे हैं; फिर भी अचैतन्य जगत की समस्त बाधा विपत्तियों के पहाड़ को उखाड़कर धकेलकर चैतन्य भक्तगण नित्यप्रति चैतन्य के वार्तावह नदीया-प्रकाश को जगत में प्रकाशित कर रहे हैं।

प्रश्न 252—किसका संग करणीय है?

उत्तर—हमारे गुरुवर्ग कर्म और ज्ञान को ठग का धर्म कहते हैं। इसलिए कर्म के पथ और ज्ञान के पथ का परित्याग कर भक्ति का पथ ही हमारा एकमात्र अनुसरणीय पथ है। जो लोग उसी पथ के पथिक हैं, उन भक्तों का संग ही हमारे लिए आवश्यक है। अपने से श्रेष्ठ भक्त का संग ही करणीय है। चैतन्य के मनोभीष्ट संस्थापक श्रीरूप की चरणधूल ही हमारी एकमात्र आकांक्षा की वस्तु है। भक्तसंग द्वारा ही भक्ति होती है। कर्मी, ज्ञानी और योगी—ये सभी अभक्त एवं स्व-पर-वञ्चक हैं। इसलिए इनका संग परित्यज्य है। शुद्धभक्त के संग के अतिरिक्त अन्य का संग अमंगलजनक है।

प्रश्न 253—क्या आनुगत्य विशेष आवश्यक है?

उत्तर—अवश्य ही। स्वतन्त्र होने पर हरिभजन नहीं होता। स्वतन्त्र व्यक्ति कदापि भक्त नहीं हो सकता। आचार्य का आनुगत्य करने से ही मंगल होता है। स्वतन्त्र व्यक्तियों का ही अलग-अलग मत होता है। शतकोटि गोपियों के शतकोटि मत होने पर कृष्णेन्द्रियतर्पण में बाधा पड़ जाती है। श्रीवृषभानुनन्दिनी के आनुगत्य के अतिरिक्त माधव के मन को रखने की क्षमता किसी में भी नहीं है। श्रीगुरुपादपद्म उन्हीं श्रीवृषभानुनन्दिनी के अन्तरंग निजजन और अभिन्न मूर्ति हैं। इसीलिए मंगलाकांक्षी व्यक्तिमात्र के लिए गुरु का आनुगत्य विशेष आवश्यक है। इसके

अतिरिक्त मंगल का कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

प्रश्न 254—कर्मी, ज्ञानी और भक्त के विचार कैसे हैं?

उत्तर—मनुष्यजाति साधारणतः अपने इन्द्रियतर्पण के अतिरिक्त और कुछ समझना ही नहीं चाहती। सैकड़ों हजारों लोगों के असुख और असुविधा के विनिमय में मेरी सुख-सुविधा हो, यही कर्मी की चिन्ताधारा है। ज्ञानी का विचार है—जगत के सुख और असुख दोनों का ही परित्यागकर निर्विशेष हो जाएँ। कर्मी लोग अपनी शक्ति की प्रधानता के स्थापन में व्यस्त हैं; और ज्ञानी लोग सर्वशक्तिमान् भगवान को निःशक्तिक प्रतीत कर पाने पर निश्चिन्त होते हैं। दोनों क्षेत्रों में भगवान की शक्ति का सम्मान या स्वीकार नहीं किया गया है, इसीलिए मंगल चाहने वाले व्यक्ति कर्म और ज्ञान का पथ ग्रहण न कर भक्ति का पथ ही ग्रहण करते हैं। भगवान के ऊपर सम्पूर्ण निर्भरता एवं भगवान का सुखविधान ही भक्त का विचार है। भगवान के इन्द्रिय-तर्पण के उद्देश्य में ही वे लोग समस्त कार्य और समस्त ज्ञान को नियुक्त करते हैं। अपना सब कुछ भगवान को समर्पित करने का नाम ही भक्ति या एकायन-पन्थ है। इसके अतिरिक्त अन्य विचारों में दौड़ने पर अभक्ति या बह्वयन-पन्थ आ जाता है। बह्वयन-पन्थी बह्वीश्वरवादी होकर जिन विचारों का अत्यन्त आदर करते हैं, वे विचार उनके अनुसार ठीक होने पर भी भक्ति का विचार उनसे सम्पूर्ण पृथक् है। मेरे चित्त की वृत्ति जिस स्थान पर परिपूर्णरूप से भगवान् की सेवा में होती है, वहीं पर साधुता है, नहीं तो सर्वत्र ही असाधुता है।

भक्तगण निष्काम होते हैं। कर्मी, ज्ञानी और योगी की भाँति स्वसुख-वाञ्छा का लेशमात्र भी उनमें नहीं है। भक्तगण प्रतिक्षण कृष्ण के सुखानुसन्धान में व्यस्त रहते हैं। वे तृणादपि सुनीच होते हैं (अपने को तिनके से भी दीनहीन समझते हैं)। भगवान की सेवा के अतिरिक्त उनका कोई दूसरा कार्य या चिन्ता नहीं है। इसीलिए भक्तगण निर्भय, निश्चिन्त और सुखी हैं; किन्तु कर्मी, ज्ञानी सभी

सकाम होने के कारण अशान्त या दुःखी हैं। शास्त्र कहते हैं—

कृष्णभक्त निष्काम अतएव शान्त।
भुक्ति–मुक्ति–सिद्धकामी सकलइ अशान्त॥

प्रश्न 255—क्या सांसारिक प्रवृत्ति को रोकना चाहिए?

उत्तर—अवश्य ही। यदि सांसारिक प्रवृत्तियों को रोकने की व्यवस्था नहीं की जाती हैं, तब जीव को पुनः जन्म लेकर मृत्यु को स्वीकार करना होगा। इसीलिए इन्द्रिय–चालन को रोकने की आवश्यकता है। इन्द्रियों को न रोकने पर संसार–प्रवृत्ति नहीं जाएगी एवं दुःख भी दूर नहीं होगा। असल वस्तु का अनुसरण करना आवश्यक है; ऐसा करने पर संसार वासना रुक जाएगी, चतुर्वर्ग का प्रयास (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए चेष्टा) नहीं रहेगा एवं सब कुछ मंगलमय हो जाएगा अर्थात् परम–मंगल प्राप्त होगा।

जिनके हृदय में कृष्ण प्रकाशित होते हैं, उनकी समस्त प्रकार की कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। कृष्ण कामदेव हैं, अतः समस्त कामनाएँ उनकी ही सेवा करेंगी, दूसरे की नहीं। जिन्होंने कृष्ण को हृदय में धारण किया है, वे तो स्वयं भोगी नहीं है कि कामनाएँ उनकी सेवा करें।

जब हम वैष्णव की जीवन–यात्रा के मार्ग का अनुसरण नहीं करते हैं, तब हमारी इन्द्रियाँ असत् पथ पर चलने लगती हैं। हम यह नहीं समझ पाते कि हमारी समस्त इन्द्रियों के स्वामी एकमात्र कृष्ण हैं। मनुष्य–शरीर हमें हरिभजन के लिए ही मिला है। इस शरीररूपी नौका के द्वारा गुरु–कर्णधार (नाविक) के नियन्त्रण में भवसागर पार होकर हम श्रीकृष्ण के चरणकमल प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु ऐसा न करके संसार सागर में डूब मरने की व्यवस्था करना क्या हमारा कर्तव्य है?

प्रश्न 256—हमारा मंगल कैसे होगा?

उत्तर—श्रीगौरसुन्दर (चैतन्य महाप्रभु) के चरणकमल ही अमूल्य वस्तु हैं। समग्र पृथ्वी पर महाप्रभु की कथा की चर्चा सदैव हो। ऐसा होने पर जीव का मंगल होगा, अति

मानवीय वृत्तियाँ सब की मुट्ठी में आ जाएँगी, अतिमर्त्य विषयों का अनुभव होगा, असल सत्य का सन्धान पाकर यह समझ में आ जाएगा कि एकमात्र श्रीचैतन्यदेव की कथा ही मंगलजनक है, अन्य सभी कथाएँ अमंगलजनक हैं।

'अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि', 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते' आदि वाक्यों को कहकर भगवान् कृष्ण चन्द्र हमलोगों को कितने प्रकार से Assurance (आश्वासन) देते हैं, कितने सुअवसर देते हैं, बताते हैं उनका आश्रय लेने पर ही मंगल होगा, अपने दायित्व में सभी का मंगल करने का भार लेते हैं; परन्तु क्या उनकी बातों पर हम विश्वास करते हैं। इसीलिए स्वयं कृष्ण ही पुनः इस जगत में सेवक का भार लेकर आये— गुरु का कार्य लेकर। वे गौरांग रूप में आकर कहने लगे —"मैं कृष्ण का सेवक मात्र हूँ। यदि कोई मेरी बात स्वयं सुनना चाहता हो, सुन सकते हो, तो सभी का मंगल होगा।" कृष्ण ही आश्रय के भाव में विभावित होकर कृष्णान्वेषण करते हुए जगत को समझाने लगे—कृष्ण ही सर्वेश्वरेश्वर हैं, परमोपास्य वस्तु हैं, उनका चरणाश्रय करने में ही, उनके नाम-रूप-गुण-परिकर-वैशिष्ट्य-लीला आदि का अनुशीलन करने से ही सभी का यथार्थ में मंगल होगा।

प्रश्न 257—भगवत्-तत्त्व किस रूप में प्रकाशित हैं?

उत्तर—ईशतत्त्व पाँच प्रकार से प्रकाशित हैं—परतत्त्व, व्यूह, वैभव, अन्तर्यामी और अर्चा। ये सब प्रभुतत्त्व हैं। इनके अतिरिक्त सभी वश्यतत्त्व या सेवकतत्त्व हैं। प्रभु सेवकमण्डली की सेवा ग्रहण करते हैं। प्रत्येक ईशतत्त्व का अपने-अपने सेवकों के साथ आदान-प्रदान है। ईश्वर जिनके ऊपर ईशिता (प्रभुत्व) करेंगे, उन लोगों के न रहने पर ईशिता कार्य नहीं होता है। इसीलिए प्रत्येक ईशतत्त्वके सेवक हैं।

पहले अर्चावतार की पूजा उपकरणों द्वारा होती है। मानस पूजा के द्वारा अन्तर्यामी की पूजा होती है। इसके बाद राम आदि वैभव अवतारों की पूजा हैं। श्रीरामावतार में हनुमान् और सुग्रीव उनके सेवक थे। वैभव अवतार की

पूजा तभी सम्भव है, जब वे सेवकों को दर्शन देते हैं। इसके बाद व्यूहतत्त्व का विचार आता है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चतुर्व्यूह हैं; इनके बाद परतत्त्व श्रीकृष्ण की बात आती है।

हम नीचे से ऊपर उठने के लिए Uphill work करते हैं। इस परतत्त्व की ओर अभियान के पथ पर सर्वप्रथम अर्चा ही हमारी सहायता करेंगे। इसलिए शास्त्र में कहा गया है—

येन जन्मशतैः पूर्वं वासुदेवः समर्चितः।
तन्मुखे हरिनामानि सदा तिष्ठन्ति भारत॥

अन्तर्यामी अर्थात् जो Immanent pure unalloyed conscience (सर्वव्यापी विशुद्ध अविमिश्रित अन्तःकरण) हैं, वे ही चैत्यगुरु हैं। अन्तर्यामी is an internal Entity, but he is not an outside Entity.

कृष्ण को भूलकर हम इस जगत में आये हैं। We have come far off from our eternal Home. We are to go back there. (हम अपने शाश्वत गृह से बहुत दूर आये हुए हैं। हमें वहाँ वापस जाना होगा।) Our first aid is अर्चा, second अन्तर्यामी, third वैभव, fourth व्यूह, fifth परतत्त्व।

गुरु-वैष्णवों का साक्षात् संग और उसके फलस्वरूप हरिकथा श्रवण आदि द्वारा जिस मंगल का उदय होता हैं, प्राकृत बुद्धि से युक्त होकर बहुत जन्मों तक अर्चन के द्वारा भी वह नहीं होता है। करुणामय श्रीगुरु-वैष्णव कथा द्वारा जो भाव प्रकाशित करते हैं, श्रीविग्रह कृपापूर्वक हमें दर्शन देने पर भी वैसा नहीं करते। जो अन्तर्यामी भगवान् हैं, वे भी हमारे साथ बातचीत नहीं करते। शास्त्र में कहा गया है—

शिक्षागुरुके त' जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ एइ दुइ रूप ॥
जीवे साक्षात् नाहि ताते गुरु-चैत्त्यरूपे।
शिक्षागुरु हन कृष्ण महान्त-स्वरूपे ॥
अन्तर्यामी ईश्वरेर एइ रीति हय।
बाहिरे ना कहे, वस्तु प्रकाशे हृदय ॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

वैभवतत्त्व श्रीराम आदि अवतारगण जीवों के साथ बात करते हैं, उपदेश देते हैं, शासन करते हैं एवं उनके मंगल–अमंगल का निर्धारण करते हैं। व्यूहतत्त्व के कार्य भिन्न भिन्न हैं। एकमात्र वस्तु परतत्त्व ही चार प्रकार से प्रकाशित होते हैं। ईश्वर के अनुग्रह से ही ईशतत्त्व ज्ञात होता है। शास्त्र में कहा गया है—

ईश्वरेर कृपालेश हय त' जाहारे।
सेइ त' ईश्वरतत्त्व बुझिबार पारे॥

हम सोचते हैं कि अर्चा या श्रीविग्रह Inanimate (निर्जीव) हैं; परन्तु वास्तव में अर्चावतार जड़वस्तु नहीं हैं, वे सच्चिदानन्द विग्रह हैं। भगवान् श्रीगौरांगदेव ने कहा है—

ईश्वरेर श्रीविग्रह सच्चिदानन्दाकार।
से विग्रह कह सत्त्वगुणेर विकार॥
श्रीविग्रह जे ना माने, सेइ त' पाषण्ड।
अदृश्य, अस्पृश्य से हय यमदण्ड्य॥

शास्त्र में और भी कहा गया है—

प्रतिमा नह, तुमि—साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन।
विप्र लागि' कर तुमि अकार्य–करण॥

श्रीगुरुदेव Intermediate (मध्यस्थ) के रूप में हमारी सहायता करते हैं। वे अर्चा, अर्चन और उपासक के बीच में Guide (मार्ग प्रदर्शक) हैं। क्योंकि यदि अर्चा और अर्चक का स्वरूपज्ञान नहीं रहता है, तब तो विग्रह–पूजा बच्चों के गुड्डे–गुड़ियों का खेल हो जाएगी। गुड़ियों की पूजा की आवश्यकता नहीं है, किन्तु भगवान् की पूजा की आवश्यकता है।

जिनकी पूजा की जाती है, वे अर्चा हैं। अर्चावतार साक्षात् भगवान हैं। भगवान ही हमारे कल्याण के लिए अर्चावतार के रूप में प्रकटित हैं। साधारण लोगों के विचार में अर्चा प्रतिमामात्र है, अर्चा नहीं चलता है, Initiative ले नहीं सकता (अपने आप कुछ कर नहीं सकता)। किन्तु यह उन लोगों की भ्रान्ति है। शुद्धभक्त का संग होने पर उनकी यह भ्रान्ति दूर हो जाएगी। परतत्त्व का सब कुछ श्रवणकीर्तन के ऊपर निर्भर करता है। इसीलिए शास्त्र में

कहा गया है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु कृष्ण प्रसादे पाय भक्तिलता–बीज॥
माली हञा सेइ बीज करे आरोपण।
श्रवण–कीर्तन–जले करये सेचन॥

श्रीगुरुदेव के कीर्तन करने पर अन्य सभी श्रवण करते हैं। परन्तु आज के जगत में इसका उल्टा नियम हो गया है। किराये के कथावाचक और पाठक स्वयं श्रवण न करके अर्थात् शिष्य न होकर गुरु के आसन पर बैठकर स्वयं कीर्तन करने के लिए व्यस्त हो रहे हैं। श्रीगुरुदेव कौन सी वस्तु हैं एवं उनकी उपासना किस प्रकार होती है, यह जानना आवश्यक है। शास्त्र में कहा गया है—

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

श्रीगुरुदेव दिव्यज्ञानरूपी अञ्जनशलाका के द्वारा हमारे अज्ञानान्ध चक्षुओं को उन्मीलित करते हैं। हमारी जड़ आँखों की बीमारी दूर होने पर हम foreign elements (बाह्य विषयों) के विचारों से मुक्त होते हैं। श्रीगुरु–वैष्णवों के पास केवलमात्र आ जाने पर ही सर्वसिद्धि हो गयी, ऐसा नहीं समझना चाहिए। पेड़ के नीचे आकर ही नारियल मिल गया, ऐसा सोचना झूठ है। पेड़ पर चढ़ना होगा और नारियल तोड़कर उससे छिलका उतारने पर गूदा और जल मिलेगा। गुरु–वैष्णवों के आनुगत्य में भजन और योग का मार्ग एक नहीं हैं। भक्तियोग के अतिरिक्त कोई सुविधा नहीं है। यदि केवल खान–पान किया एवं वेदान्त और न्याय आदि पढ़ा, तो उससे सुविधा नहीं होगी। न्यायशास्त्र और वेदान्त के निर्विशेषत्व आदि में पाण्डित्य प्राप्तकर वैकुण्ठ लोक में नहीं जा सकते। सद्गुरु के चरणों का आश्रय लेकर हरिभजन करने से ही मंगल होता है।

प्रश्न 258—गुरुनिष्ठ वैष्णवों का विचार कैसा होता है?

उत्तर—समग्र जगतवासी मेरे मान्य अर्थात् सम्मान के पात्र हैं या नमस्य अर्थात् नमस्कार के योग्य हैं—ऐसा विचार न आने पर मैं श्रीगुरु के चरणकमलों में नमस्कार नहीं कर सकता। मेरे गुरु समग्र जगत के गुरु हैं। मेरे गुरुजी के विद्वेषी व्यक्ति जगदीश के विद्वेषी हैं—जगत में सभी के विद्वेषी हैं—मनुष्यमात्र के विद्वेषी हैं, इस प्रकार के विचार न आने पर मैं श्रीगुरुचरणकमलों का भृत्य नहीं हो सकता, श्रीगुरुचरणकमलों में आत्मसमर्पण नहीं कर सकता, अपने लघुत्व का अनुभव नहीं हो सकता और तृणादपि सुनीच, तरु की भाँति सहिष्णु, अमानी, मानद होकर हरिकीर्तन नहीं कर सकता। श्रीगुरुचरण-कमलों में ऐसी निष्ठा रहने पर ही समग्र जगत को सम्मान दिया जा सकता है, स्वयं अमानी हुआ जा सकता है और सर्वक्षण हरिकीर्तन किया जा सकता है।

प्रश्न 259—हमलोग क्या करेंगे?

उत्तर—अपनी सारी अहमिका को छोड़कर भगवत्-चरणकमलों में सम्पूर्णरूप से आत्मसमर्पण करने से ही हम लोगों का मंगल होगा। कर्म फलभोग में मैं recipient (भोक्ता) हूँ, ज्ञान में भी recipient हूँ किन्तु भक्ति में अधोक्षज वस्तु recipient हैं, इसीलिए भक्तिपथ ही आश्रय लेने योग्य है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदैव मेरे सम्मुख स्वयं को प्रकाशित करने के लिए उत्सुक हैं, मुझे केवल तत्पर होकर उनकी कृपा को वरण करना होगा।

दूसरों को शिष्य बनाना नहीं है, स्वयं शिष्य बनना होगा। वैष्णव सभी वस्तुओं में गुरु दर्शन करते हैं। दूसरों को शिष्य या सेवक ज्ञान करने से हरिकीर्तन नहीं होगा। कृष्ण सेवा को छोड़कर भी गुरु-वैष्णवों की सेवा करनी होगी, तभी हमारा मंगल होगा।

हम लोग अहंकार से कोई कार्य नहीं करेंगे या कोई बात नहीं कहेंगे। यदि करें या कहें, तो असुविधा और दायित्व आ जाता है। नित्यकाल हरिकीर्तन करना ही हमारा कार्य है। यदि हम लोग भगवान की कथा उनके निजजन श्रीगुरुदेव के आज्ञावाही दास के रूप में कहते हैं तो और

कोई दायित्व नहीं रहता है। सुविधा हो या असुविधा हो, इसमें मेरा व्यक्तिगत दायित्व नहीं रहता है। जिस प्रकार डाकिया लोगों के निकट संवाद पहुँचा देता है या वितरण करता है, परन्तु संवाद के बारे में उसका कोई दायित्व नहीं रहता है। हमारी योग्यता रहे या न रहे, हमें भरोसा है कि यदि हम श्रीगुरुपादपद्म की कथा कहेंगे, तो हम असुविधा में नहीं पड़ेंगे। यदि हम लोग श्रीगुरुदास के रूप में उनके आनुगत्य में सदैव श्रीहरिकथा श्रवण कीर्तन करेंगे, तो उससे हमें कोई असुविधा तो होगी ही नहीं, अपितु हमारा महामंगल होगा।

अपूर्णवस्तु के संग और सेवा के द्वारा अमंगल होता है और पूर्णवस्तु के संग और सेवा के द्वारा हमारा मंगल होता है। पूर्ण के लिए पूर्णयत्न करना आवश्यक हैं। अपूर्ण के लिए दिन गंवाने से अपूर्ण वस्तु प्राप्त होगी। इसीलिए इस जगत में रहते समय जगत् के समस्त जीवों का एकमात्र कर्तव्य है—हरिकथा श्रवण करना। श्रवण किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा कीर्तन की अपेक्षा रखता है। सब समय साधुओं के निकट हरिकथा श्रवण का सुयोग न होने पर स्वयं ही अनुकीर्तन करते हुए श्रवण और कीर्तन करना उचित हैं।

प्रश्न 260—क्या त्यागी होना अच्छा है?

उत्तर—कदापि नहीं। हम लोग भोगी भी नहीं होंगे, त्यागी भी नहीं होंगे। हम लोग भगवान के भक्त या सेवक होंगे। जो लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के कंगाल (भिक्षुक) हैं, वे लोग कपटी हैं, वे भक्त नहीं हैं। भोगी लोग धर्मार्थकाम-कामी होते हैं। त्यागी लोग मोक्षकामी होते हैं। और भक्त कृष्णसेवा प्रार्थी होते हैं।

फल्गुत्यागी होने पर मैं भोग से बाह्यतः बच गया—यह सत्य है, किन्तु यह 'खाट के टूट जाने पर भूमि ही शय्या' नीति के समान है। इसमें कुछ पाना या न पाना दोनों ही मेरे लिए हैं, इसमें भगवान के सम्बन्ध में कोई बात नहीं है। किन्तु भक्त कृष्ण-प्रीति के लिए भोग का त्याग करते हैं एवं निरन्तर कृष्णसेवा में नियुक्त रहते हैं,

इसीलिए वे नित्य मंगल को प्राप्तकर चिरसुखी होते हैं।

भगवान के द्वारा अपनी सुख-सुविधा करवा लूँगा—इस विचार में बहुत सी असुविधाएँ हैं। कोई कह रहा है—कृष्ण बनकर प्रकृति को भोग करूँगा, कोई कह रहा है—स्त्री बनकर कृष्ण को भोग करूँगा—ये दोनों ही सकाम हैं। प्रत्येक वस्तु को कृष्ण के सम्बन्ध में निर्बन्धित न करने से यह भोग होता है, नहीं तो त्याग हो जाएगा—भक्ति नहीं होगी। कर्म और ज्ञान—भोग और त्याग, ये दोनों ही अभक्ति हैं। इनमें भगवान की कोई बात नहीं है। भोग और त्याग में केवल अपना सुख—उद्देश्य है, किन्तु भक्ति में भगवत्सुखानुसन्धान के अतिरिक्त दूसरी कोई अभिसन्धि नहीं है।

प्रश्न 261—हमलोगों का मुख्य कार्य क्या है?

उत्तर—श्रीमन्महाप्रभु के उपदेश या शिक्षा अपने जीवन में आचरण करते हुए उनका सर्वत्र प्रचार करना ही हमारा मुख्य कार्य है। उसी में ही अपना और दूसरों का मंगल होगा। अत्यन्त गरीब जीव हम कदापि दरिद्र-नारायण नहीं हैं। अपनी यह दरिद्रता हटाने के लिए धनसंग्रह करना आवश्यक है। कृष्णप्रेम ही वही महाधन है।

प्रेमधन बिना व्यर्थ दरिद्र जीवन।
दास करि वेतन मोरे देह प्रेमधन॥

यही हमारा एकमात्र प्रार्थनीय विषय है। महाप्रभु का आदेश—

पृथिवीते आछे जत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम॥

जगत में मायिक नाम ही सर्वत्र चल रहा है, वैकुण्ठनाम प्रचारित हों। पांचरात्रिक-मत से श्रीमन्दिर बनें, ठाकुरजी रहें, आदर के साथ ठाकुरजी की सेवा-पूजा हो, उसी से ही लोगों का मंगल होगा; किन्तु जो लोग Better class—Higher class है, उनका ही प्रचार कार्य है। वैकुण्ठनाम का सर्वत्र प्रचार ही महाप्रभु का मनोभीष्ट है। प्रचुर परिमाण में वैकुण्ठ-कथा कहनी होगी, इसीलिए प्रचुर परिमाण में Pamphlet (पुस्तिकाओं) की छपाई हो, जिससे

बहुल प्रचार की सुविधा होगी। बड़े लोग—जो लोग धनवान् और शिक्षित हैं, वे कनक–कामिनी–प्रतिष्ठा की आशा में घूम रहे हैं, उनके निकट प्रचुर परिमाण में चिल्लाकर गले को कष्ट देने पर भी, वे लोग इन सभी कथाओं मे कान नहीं देंगे। अतएव उनके लिए समय नष्ट करने की क्या आवश्यकता है? इसीलिए हम कह रहे हैं—हमारी प्रचार–प्रणाली इस प्रकार होनी चाहिए—प्रचुर परिमाण में Pamphlet छपावाये जायें, जिससे वे लोग देखें कि दर्शनशास्त्रों में कितनी क्या आलोचना हुई है, और हम कितनी बड़ी चीज कहने जा रहे हैं।

दाम्भिक–व्यक्ति कभी भी प्रचार कार्य नहीं कर सकता। अहंकारी व्यक्ति प्रचारक का वेश ग्रहण करके "मैं ही प्रचारक हूँ"—ऐसा अभिमान करता है, इसीलिए असल सत्य उसके निकट आत्मप्रकाश नहीं करता है। अतएव उसके द्वारा जगत का कोई यथार्थ मंगल नहीं हो सकता है।

महाप्रभु ने तृणादपि सुनीच और मानद होकर हरिकीर्तन करने के लिए कहा है। तृणादपि सुनीच न होने से हरिकीर्तन नहीं होता है। परचर्चा करते हुए दिन बिताने से मंगल नहीं होगा। अपनी भलाई किसमें है—इसका विचार करना चाहिए। **'परचर्चकेर गति नाहि कोन काले'**—यही महाजन–वाक्य है। अन्याभिलाषी दूसरे कर्म करें, मुझे इससे क्या लेना देना है? मैं कह रहा हूँ कि दूसरे लोगों का अकल्याण हो रहा है, किन्तु मैं तो उनमें भी मन्द हूँ। इसीलिए मेरे मन्द मन को सब समय भगवद्–भजन में नियुक्त रखना होगा। Dissuading Policy (खण्डन–पन्था) अपनाकर दूसरे लोगों पर आक्रमण करने की इच्छा से घूमना प्रचारक का कार्य नहीं है, यह प्रतारक का कार्य है।

हम लोग अपना कार्य भूलकर विभिन्न कार्यों में व्यस्त हो गये हैं। हमारे हृदय में जो गंदगी जमी हुई है, उसे Weed out (निराई) करने के लिए यत्नवान् होना चाहिए। यद्यपि यह मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ है, फिर भी यही मेरे लिए सबसे पहले आवश्यक है। अन्यथा आचारहीन प्रचार का कोई मूल्य नहीं है। स्वयं सर्वक्षण हरिभजन न

करने पर दूसरों से हरिभजन कराना सम्भव नहीं है।

श्रीगुरु-नित्यानन्द का आनुगत्य विशेष आवश्यक है। कृष्णशक्ति श्रीगुरुदेव ही मूल प्रचारक हैं। उनके आनुगत्य में ही प्रचार करना होगा। अन्यथा प्रचार नहीं हो सकता है। शास्त्र कहते हैं—

कलियुगधर्म-कृष्णनामसंकीर्तन।
कृष्णशक्ति बिना नहे तार प्रवर्तन॥

श्रीरूप-सनातनादि षड़गोस्वामी हमलोगों के गुरु हैं। इनका आनुगत्य करना होगा। श्रीरूप के आनुगत्य के बिना भजन नहीं होगा। श्रीरूपगोस्वामी से अभिन्न श्रीगुरुपादपद्म की पदधूलि ही हमारी सम्पत्ति हों, तभी मंगल होगा। भक्ति-राज्य में दास्य का विचार ही प्रबल है। दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर—सभी रसों में ही दास्यभाव की प्रबलता है।

चारों रसोंमें ही श्रीकृष्णदास्य :—

पिता-माता-गुरु-सखा-भाव केने नय।
कृष्णप्रेमेर स्वभावे दास्य-भाव से करय॥

(चैतन्य चरितामृत आदि-लीला 6.80)

अनुवाद—पिता-माता-गुरु अथवा सख्यभाव, कोई भी भाव क्यों ना हो, श्रीकृष्णप्रेमका ऐसा स्वभाव है कि उन सब भावोंमें दास्यभाव ही होता है।

अमृतप्रवाह भाष्य—जो कोई भी भाव क्यों ना हो, सभी भावोंके अन्तर्गत दास्यभावको स्वीकार करना होगा।

प्रश्न 262—गुरु कौन हैं?

उत्तर—जो संसार रूप मृत्यु से मेरी रक्षा करते हैं, वे ही श्रीगुरुपादपद्म हैं। 'मैं मर जाऊँगा'—इस भय से,—इस आशंका से जो मेरा उद्धार कर सकते हैं, वे ही सद्गुरु हैं। जिनके निकट उपस्थित होने से दूसरे किसी की कथा (विचार) सुनने की आवश्यकता नहीं होती है—दूसरे किसी के निकट जाना नहीं होता, वे ही गुरुदेव हैं। समस्त मंगलों के मंगल स्वरूप भगवान ने मेरे सभी मंगलों का भार जिनके हाथों में अर्पण किया है, वे ही समस्त कल्याणों के मूल श्रीगुरुपादपद्म हैं।

जिनकी कृपा से कर्त्तापन का अभिमान दूर होता है,

वे ही श्रीगुरुपादपद्म हैं। जो हमारी कानों में श्रौतवाणी प्रदान करते हैं, जो निरन्तर हमारे कानों में श्रौतवाणी का अभिषेक करके हमको तृण से भी सुनीच, वृक्ष की भाँति सहिष्णु, अमानी, मानद कर रहे हैं एवं सर्वदा हमारे मुख में वैकुण्ठकीर्तन प्रकाशित होने की शक्ति सञ्चार करते हैं, वे कृष्णशक्ति ही श्रीगुरुपादपद्म हैं। श्रीगुरुपादपद्म ही हमें मायाशक्ति के चंगुल से मुक्त कर देते हैं।

समस्त जगत्वासी हमारे मान्य या नमस्य हैं, समस्त जगत गुरुसेवा का उपकरण है, सभी हमारे सेव्य या गुरु हैं, मैं कृष्ण-सेवक हूँ, कृष्णसेवा ही मेरा धर्म है—यह दिव्यज्ञान जो प्रदान करते हैं, वे ही श्रीगुरुपादपद्म हैं।

प्रश्न 263—भक्तिमार्ग क्या है?

उत्तर—जिस पथ में कृष्णसेवा की कथा (बात) नहीं है, वहीं अभक्तिमार्ग है। श्रीकृष्ण की शुद्ध सेवा में कृष्ण सुखानुसन्धान के अतिरिक्त दूसरी कोई अभिलाषा नहीं है। शुद्धभक्ति—श्रीकृष्ण का अनुकूल अनुशीलन है।

भक्तिमार्ग में श्रीकृष्णसुख से तात्पर्य है, किन्तु अभक्तिमार्ग में कृष्णसुख का कोई विचार नहीं है, वह आत्मेन्द्रियतर्पण का पथ है।

प्रश्न 264—कौन आनुगत्य नहीं कर सकता है?

उत्तर—अधोक्षज वस्तु श्रीकृष्ण की सेवा के अतिरिक्त जीव द्वारा मंगल प्राप्त करने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। उन परमसेव्य वस्तु की सेवा मेरे गुरुदेव के अतिरिक्त और कोई भी नहीं कर सकता—जहाँ पर इस उपलब्धि का अभाव है, वहाँ पर आनुगत्य या आत्मसमर्पण सुष्ठुरूप से नहीं होता है।

प्रश्न 265—क्या गुरु-वैष्णव हमारे समस्त कार्यों को अनुमोदन करते हैं?

उत्तर—कभी भी नहीं। जिस प्रकार सद्वैद्य मरीज के मन के अनुसार बातें नहीं कह सकता, ठीक उसी प्रकार सद्गुरु भी बद्धजीव के मन को अच्छे लगने वाली बातें

कहने में असमर्थ हैं। जो लोग सांसारिक सुखशान्ति की प्राप्ति के लिए माता-पिता के प्रति भक्ति प्रदर्शन करते हैं और करेंगे, उसको मुझ में अनुमोदन करने की योग्यता नहीं है, क्योंकि हमारा चित्त उनकी भाँति सुनीतिपरायण नहीं है। हमलोग श्रौतपन्थी हैं, भक्तिनीति ही हमारा आदर्श और लक्षित विषय है। इसीलिए हम गुरु-वैष्णव सेवा में उदासीन होकर दूसरी ओर दृष्टि नहीं दे सकते और दूसरों का परामर्श भी ग्रहण नहीं कर सकते। आत्मधर्मरूप भगवत् सेवा को छोड़कर मनोधर्म के वशीभूत होकर दूसरों की सेवा करने का समय हमारे पास नहीं है।

प्रश्न 266—ब्राह्मण कौन है?

उत्तर—ब्राह्मण ब्रह्मवस्तु की खोज करते हैं। जो देहधर्मी या मनोधर्मी नहीं है वे ही ब्राह्मण हैं। ब्रह्म को जाननेवाले ही ब्राह्मण हैं।

प्रश्न 267—देह की सार्थकता कैसे होगी?

उत्तर—देह जड़ पदार्थ है। इस हड्डी-मांस की थैली के साथ कृष्ण का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसको गुरु आनुगत्य में श्रीकृष्णसेवा में लगा पाने से सुविधा होगी। जागतिक विद्याबुद्धि इत्यादि को भी भगवान की सेवा में लगाने से मंगल होगा।

प्रश्न 268—किस भक्त की सेवा किस प्रकार से करनी चाहिए?

उत्तर—शत प्रतिशत सेवा महाभागवत के लिए करनी होगी। 66.6 recurring कार्य मध्यम-भागवत के लिए करनी होगी। 33.3 recurring कनिष्ठ भागवत के लिए करनी होगी।

प्रश्न 269—क्या गुरु को भोक्ता भगवान ज्ञान करना ठीक है?

उत्तर—कभी भी नहीं। श्रीगुरुदेव श्रीकृष्ण की भाँति भोक्ता भगवान या गोपीनाथ नहीं हैं। श्रीगुरु सेवक-भगवान हैं। गुरु भगवान् होकर भी भगवत्-प्रेष्ठ भक्तराज हैं। गुरु

आश्रयविग्रह हैं, वे कृष्ण की भाँति विषयविग्रह या राधा की भाँति मूल आश्रयविग्रह नहीं हैं।

श्रीगुरुदेव गौराभिन्न विग्रह हैं। वे श्रीगौरांग से अचिन्त्यभेदाभेदत्त्व, श्रीगौरांग के प्रकाशविग्रह हैं। वे आश्रयजातीय भगवत्तत्त्व हैं। विषयजातीय भगवत्तत्त्व के साथ उनको एकीभूतकर विषयतत्त्व का विलोप करने की चेष्टा अपराधमय निर्विशेषवाद मात्र है। यह मायावाद या पाषण्डता है।

शास्त्र कहते हैं—

यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश॥
ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे, पाय कृष्णेर चरण॥

(चैतन्य–चरितामृत आदि–लीला 1/44)

यद्यपि मेरे गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभु के दास हैं, फिर भी मैं उन्हें उनके प्रकाश के रूप में जानता हूँ। ऐसी भावना से गुरु की सेवा करते हुए कृष्ण का भजन करने पर मायाजाल छूट जाता है और कृष्ण के चरणों को जीव प्राप्त कर सकते हैं।

शास्त्र कृष्णप्रेष्ठ श्रीगुरुदेव के आश्रय में, आनुगत्य में और निर्देश में कृष्णभजन की कथा ही कहते हैं।

प्रश्न 270—क्या हरिभजन करने का विशेष प्रयोजन है?

उत्तर—अवश्य ही। और अधिक समय नष्ट न कर इसी मुहूर्त्त से ही श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करने के लिए यत्न करना कर्तव्य है। क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या युवक, क्या युवती, क्या पुरुष, क्या स्त्री यह विचार सभी के लिए ही है। क्योंकि जीवन का कब अन्त होगा, यह कोई ठीक नहीं है, निःश्वास का विश्वास नहीं है। अतएव इसी क्षण से ही हम सभी को हरिभजन प्रारम्भ करना आवश्यक है।

कोई–कोई कहते हैं कि अभी भोगसुख में समय बिताकर अन्तिम समय में हरिभजन किया जा सकता है। किन्तु यह विचार संगत नहीं है, क्योंकि Time is life. प्रति

मुहूर्त्त में ही हमारी परमायु क्षय हो रही है, जीवन का जो समय चला जा रहा है, वह फिर लौटकर नहीं आयेगा। यह सब चिन्ताकर जीवन का क्षणकाल भी हरिभजन के बिना छोड़ना उचित नहीं है।

इसीलिए महाजनों ने कीर्तन किया है—

जीवन समाप्तिकाले करिब भजन,
एबे करि गृहसुख।
कखन ए कथा नाहि बले विज्ञजन,
ए देह पतनोन्मुख॥

(अभी गृहसुखों में डूबा रहूँ और जीवन के अन्तिम समय में भजन कर लूँगा—विज्ञ व्यक्ति ऐसी बात कभी नहीं कहते, क्योंकि यह शरीर से प्राण कब निकल जायें, कोई पता नहीं।)

भजन का सुसमय नष्ट करने से त्रिताप के अग्निकुण्ड में दग्धीभूत होना पड़ेगा। इसीलिए साधुसंग करना विशेष प्रयोजनीय है। श्रीकृष्णभजन ही हमारा एकमात्र कृत्य है, यह साधुसंग के फल से ही समझने का सौभाग्य प्राप्त होगा और तब भोग एवं त्याग-चेष्टा परित्यागकर भजन में तत्पर होने से स्वरूप-सिद्धि प्राप्त करने की योग्यता आयेगी। गुरु के आनुगत्य में भजन करते-करते क्रमशः पूर्व कर्म-फल समाप्त होने से सिद्धि प्राप्त होगी।

प्रश्न 271—श्रीकृष्ण की सेवा कैसे प्राप्त होगी?

उत्तर—वृन्दावननाथ श्रीकृष्णचन्द्र नित्यसिद्ध ब्रजवासी श्रीनन्दयशोदा के नित्य पुत्र हैं, वे अन्य किसी के पुत्र नहीं हैं। प्रचुर परिमाण में सेवा करने के फलस्वरूप ही नन्द-यशोदा ने स्वयं-भगवान को पुत्र रूप में प्राप्त किया है। यही यशोदा-नन्दन श्रीश्यामसुन्दर ही हमारे उपास्य हैं। 'आराध्यो भगवान व्रजेशतनयः' श्लोक में देवकी-नन्दन श्रीकृष्ण की उपासना की बात नहीं कही गई है, यशोदा-दुलाल की बात ही कही गई है। वसुदेव-देवकी ने नन्द-यशोदा की तरह सेवा अधिकार प्राप्त नहीं किया है।

श्रीनन्दनन्दन की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ उपासना है। इसकी तुलना में जो सेवा के द्वारा श्रीकृष्ण को आनन्द

प्रदान करते हैं, उन नन्दराज की उपासना और भी श्रेष्ठ है। उनकी कृपा होने पर हम उनके नन्दन (श्रीकृष्ण) की सेवा प्राप्त कर पाएँगे।

श्रीनन्दनन्दन वृन्दावन में रहते हैं—शुद्ध जीवात्माओं का हृदय वृन्दावन है। गुरुरूपी नन्दराज की सेवा द्वारा हृदय सम्पूर्ण रूप से निर्मल न होने पर भगवान को हृदयरूपी श्रीवृन्दावन में नहीं प्राप्त किया जाता। केवल श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिए ही ब्रजवासीगण उन्हें चाहते हैं—कृष्ण को पाने के लिए व्याकुल होते है। कृष्ण की सेवा करने में ही उनका आनन्द है। कृष्ण के साथ उनका 'लेन-देन' का सम्पर्क (स्वार्थमय) नहीं है। वे सब निष्काम तथा निस्वार्थ हैं। श्रीकृष्ण के प्रति उनका स्वाभाविक आकर्षण है। यदि हम उन सभी ब्रजवासियों का अनुसरण कर पाएँगे, तभी हम सभी को कृष्ण सेवा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

प्रश्न 272—अशुद्ध मन कैसा होता है?

उत्तर—संकल्प-विकल्पात्मक धर्म से युक्त हृदय ही जीव का मन है, और भोगबुद्धि तथा त्यागबुद्धि परित्याग करके निरन्तर कृष्णसेवा में नियुक्त चित्त ही पूर्णपुरुष भगवान की विहार स्थली स्वरूप शुद्ध मन है।

रूप-रस-गन्ध शब्द स्पर्श का नाम विषय है। इनमें भोक्ता अभिमान करनेवाला मन ही विषयों में आविष्ट अशुद्ध मन है। ऐसे मन में कभी भी पूर्णपुरुष भगवान श्रीहरि की उपलब्धि नहीं होती। भक्ति के द्वारा पवित्र-निर्मल चित्त में ही श्रीकृष्ण का अनुभव हुआ करता है।

प्रश्न 273—शास्त्र क्या साक्षात् भगवान् हैं?

उत्तर—शास्त्र साक्षात् श्रीकृष्ण हैं—श्रीकृष्ण का अवतार हैं। हम सभी के कल्याण के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ही शास्त्र रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। भगवान श्रीगौरांगदेव ने कहा है—

शास्त्र-गुरु आत्मरूपे आपनारे जानान।
कृष्ण मोर प्रभु, त्राता—जीवेर हय ज्ञान॥

यदि हम मनोधर्म के द्वारा चालित होकर शास्त्र-आलोचना करेंगे, तो वञ्चित हो जाएँगे। शास्त्र शरणागतजन के निकट ही प्रकाशित होते है। भगवान में जिस प्रकार अचला भक्ति है, उसी प्रकार अचला भक्ति यदि श्रीगुरुदेव में होती है, तब ऐसे महात्मा के निकट ही शास्त्र का यथार्थ अर्थ प्रकाशित होता है। पण्डित-अभिमानी दाम्भिक व्यक्ति शास्त्र का तात्पर्य हृदयंगम नहीं कर पाता। हम यदि काय-मन-वाक्य के द्वारा शरणागत होकर साधु की कथा का श्रवण करेंगे, तभी शास्त्र के मर्मार्थ को समझ पाएँगे।

प्रश्न 274—कृपा पूर्वक मुझे कुछ उपदेश दीजिए।

उत्तर—हम आप सभी के समक्ष श्रीगुरुपादपद्म की कथा को नैवेद्य के रूप में केवल परिवेषण मात्र कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त हमारी और कोई योग्यता नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण अधोक्षज वस्तु हैं। ये अधोक्षज वस्तु कर्मी (भोगमय कर्म) भूमिका की वस्तु नहीं हैं—इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण की जानेवाली वस्तु भी नहीं है। यदि वे इनमें से कुछ हों, तो वे भोग्यवस्तुओं में अन्यतम हो जायेंगे। वे Centre of all Love हैं। तथा हम Part and parcel of Indefinite All Loved हैं। जिस प्रकार सूर्य एवं उसकी किरण कण हैं। किरण कण सूर्य नहीं हैं, और सूर्य को छोड़ किरण अन्य कोई वस्तु भी नहीं है। सूर्य के साथ इसका अविच्छेद्य सम्बन्ध है। इसीलिए जीव भगवान का भेदाभेद प्रकाश है।

जीव भगवान का नित्य सेवक है। इस जगत के साथ उसका कोई सम्पर्क नहीं है। भगवान विभु चेतन हैं, किन्तु जीव अणुचतेन है। भगवान स्वाधीन हैं, किन्तु जीव उनके अधीन है। भगवान ही जीव के एकमात्र आश्रय हैं एवं भगवत् सेवा ही जीव का नित्यधर्म है।

हम सभी जीव सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान के अणुचित् अंश हैं, उसी कारण पूर्णवस्तु के गुण अणु अंश में हममें भी विद्यमान हैं। कृष्ण पूर्ण स्वतन्त्र हैं और जीव की परिच्छिन्न स्वतन्त्रता है। जीव जब अपनी स्वतन्त्रता का सद्व्यवहार करके कृष्णोन्मुख होता है, तब वह सुखी होता

है तथा जब भगवान को भूलकर भोगोन्मुख होता है, तब वह दुःख भोग करता है। जीव की स्वतन्त्रता होने के कारण ही वह सेवा की ओर या भोग की ओर जा सकता है। इसी कारण जीव को तटस्था शक्ति कहते हैं। तटस्थ अवस्था में जीव स्थित नहीं रह सकता। इसीलिए जीव माया की ओर अथवा भगवान की ओर जाने को बाध्य है।

प्रश्न 275—हमारे चित्त में विक्षेप क्यों आता है?

उत्तर—प्रीति के साथ सर्वदा हरिसेवा नहीं करने पर चित्त में विक्षेप अवश्य आयेगा। भजन सदैव होना चाहिए। निरन्तरता का थोड़ा सा भी अभाव होने पर उसी छिद्र को पाकर चित्त–विक्षेप हमें ग्रास कर लेगा।

प्रश्न 276—भजन अथवा भक्ति क्या वस्तु है?

उत्तर—भगवान के सुख के लिए जो कुछ किया जाता है, उसी को भजन कहते है। भगवान की दासता ही भक्ति है। यही दास्य उत्तरोत्तर वृद्धिप्राप्त होकर सख्य, वात्सल्य एवं मधुर रस के नाम से परिचित होता है। अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान, योग, तपस्या, व्रत आदि आवरणों से रहित अनुकूल कृष्णानुशीलन ही भजन हैं। हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, व्रत–तपस्या–योग आदि अभक्ति योग भजन पदवाच्य नहीं हैं। भक्तियोग—हरिकथा श्रवण को छोड़कर कर्म, ज्ञान, योग, तप, व्रत इत्यादि द्वारा कभी भी सम्पूर्णरूप में चित्तशुद्धि नहीं हो सकती। भगवत् सेवा के द्वारा ही अशान्त मन निर्मल और शान्त होता है।

प्रश्न 277—क्या भक्ति कलियुग का धर्म है?

उत्तर—कलियुग का ही क्यों, सार्वकालिक, सार्वत्रिक एवं सार्वजनीन धर्म ही भक्ति है। कर्म, ज्ञान और योगादि नैमित्तिक प्रस्तावित धर्ममात्र हैं। वह जीव की सहज वृत्ति नहीं है। भक्ति ही मुक्तपुरुषों का एकमात्र नित्य धर्म है और बद्धजीव अनर्थग्रस्त होकर जिन समस्त धर्म का पालन करते हैं, वे कर्म, ज्ञान, योग, तप एवं व्रत हैं।

प्रश्न 278—भोगबुद्धि कैसे दूर होगी?

उत्तर—जिस दिन साधु-गुरु की कृपा से हम स्वयं को भगवत् सेवक के रूप में समझ पायेंगे, तभी हमारा मंगल होगा। दिव्यज्ञान होने पर ही हमारी भोगप्रवृत्ति या दुर्बुद्धि दूर होगी। जबतक हम भगवत्सेवक अभिमान में प्रतिष्ठित नहीं हो जाते हैं, जब तक वैष्णवी प्रतिष्ठा न आ जाय, तब तक हमलोग भोगबुद्धि से या भोग्यरूप में जगत् को देखते हैं, और तब तक 'ईशावास्य' जगत् दर्शन नहीं होता है अर्थात् सारा जगत् भगवान का भोग्य है, यह ज्ञान लुप्त हो जाता है। तब प्रभुत्व नामक एक दुर्बुद्धि आ जाती है। ऐसी अवस्था में शुद्धभक्तों के संग के अतिरिक्त बचने का अन्य कोई उपाय नहीं है। अतः मंगलाकांक्षी व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह और मात्सर्य से गर्वित प्रचारकों की श्रेणी के निकट नहीं जायेंगे। अन्यथा कभी भी दिव्य ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। निष्काम महापुरुषों का संग न होने पर हमारी कामना-वासना, प्रभु-अभिमान, भोग करने की प्रवृत्ति किसी भी प्रकार से नहीं जा सकती तथा भगवत् सेवक अभिमान भी नहीं जाग सकता। इसलिए शास्त्र कहते हैं—

महत् कृपा बिना कौन कर्मे भक्ति नय।
कृष्णभक्ति दूरे रहु, संसार नहे क्षय॥
साधुसंग कृपा किंवा कृष्णेर उपाय।
कामादि दुःसंग छाड़ि शुद्धभक्ति पाय॥

अर्थात् महापुरुषों की कृपा के बिना अन्य किसी प्रकार से भक्ति नहीं हो सकती। कृष्णभक्ति तो बहुत दूर की बात है, संसार बंधन भी नष्ट नहीं होता। साधुसंग की कृपा या कृष्ण की कृपा से ही जीव कामादि दुःसंग का त्याग कर शुद्धभक्ति प्राप्त करता है।

प्रश्न 279—गुरु का कार्य कौन कर सकता है?

उत्तर—हमारे जैसे दुर्भागे जीवों का उद्धार करने के लिए भगवान ने परजगत् (अपने धाम से) जिन महापुरुषों को मनुष्य वेश में इस जगत में भेजा है, जो त्रितापग्रस्त मनुष्यों का उद्धार कर भगवान के धाम में भेज देते हैं,

भगवान के ऐसे निजजन जो भगवान के दूत हैं, जो वैकुण्ठवाणी के वाहक हैं, केवल वे ही गुरु का कार्य कर सकते हैं।

भोगप्रवृत्ति एवं त्यागप्रवृत्ति को यूपकाष्ठ में बलि देने के लिए जिनकी वाणीरूपी खड्ग सर्वदा प्रस्तुत है, वे ही असल में साधु हैं। और वे ही असल में गुरु हैं।

विषयविग्रह कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त जिनका अन्य कोई कार्य बुद्धि या दर्शन नहीं है, वे ही श्रीगुरुपादपद्म हैं। वे किसी की भी चापलूसी नहीं सुन सकते, वे यथार्थ सत्य के निर्भीक प्रचारक हैं।

जो हरिकथा के अतिरिक्त अन्य बातें कभी भी नहीं बोलते, जो भगवान की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी भी धर्म का उपदेश नहीं देते हैं, जो 24 घण्टे में एक सेकेण्ड के लिए भी अन्य कार्य नहीं करते हैं, वे ही गुरु होने के योग्य हैं।

An insincere hypocrite (भण्ड) can not be a Guru. Mundane activity (जागतिक कार्य) में जिसकी aspiration (आकांक्षा) है, वह कभी भी गुरु नहीं हो सकता। Pseudo (कृत्रिम) Guru should be turned out and exposed. (नकली गुरु का मुखौटा खोल देना चाहिए) भगवान के चरणों में जो समस्त उपायन शिष्य surrender (समर्पित) कर रहे हैं, बीच मार्ग में यदि कोई उन्हें अपनी सेवा में लगाता है, कनक–कामिनी–प्रतिष्ठा संग्रह में नियुक्त करता है, तो उसे ठग जानकर सम्पूर्ण रूप से उसका त्याग करना होगा। ऐसे असत् व्यक्ति की कथा कभी नहीं सुननी चाहिए। विषयविग्रह की सेवा की वस्तु को बीच मार्ग में आत्मसात्कारी (अपने भोग में लगाने वाला) व्यक्ति कभी भी गुरु कहलाने योग्य नहीं है। शास्त्र कहते हैं—

इहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।
निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

(नारदीय पुराण)

जिसका कर्म, मन, वाणी भगवान की सेवामें नियुक्त हैं, समस्त अवस्थाओं में वह जीवन्मुक्त कहलाते हैं। भगवान की सेवा छोड़कर Social service के लिए जो तैयार रहते

हैं, ऐसे नास्तिकों का संग कभी नहीं करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति भी अपना या दूसरों का कल्याण नहीं कर सकते। ऐसे Social service करते–करते वे माया के गर्त में गिर जाते हैं एवं सभी को विपत्ति में डाल देते हैं।

जो भगवान को ठगने के लिए माला जप का अभिनय करते हैं या खूब चिल्लाते हैं, परन्तु प्रत्येक शब्द में कृष्ण दर्शन, प्रत्येक उच्चारण में साक्षात् गौरसुन्दर का दर्शन नहीं करते हैं, हमें उनका संग नहीं करना चाहिए। समस्त पाण्डित्य की अन्तिम सीमा कृष्ण सम्बन्ध है। यदि संग में रहकर गुरु के आनुगत्य में हमारी भगवान के सेवा की चित्तवृत्ति होती है, तब समग्र जगत् को हम भगवान की सेवा के उपकरण के रूप में देखेंगे। जगत की समस्त वस्तुओं के द्वारा भगवान की सेवा करेंगे, तभी हमारा मंगल होगा।

जिसका सर्वत्र भगवत् दर्शन और भगवत् सम्बन्ध दर्शन, जिसका सर्वत्र गुरु दर्शन, जो तृणादपि सुनीच वृक्ष के समान सहिष्णु, अमानी तथा मानद होकर निरन्तर हरिकीर्तन में रत एवं तन्मय रहते हैं, ऐसे कृष्णप्रेष्ठ महापुरुषों का संग कर उनकी सेवा के द्वारा ही हमारे मंगल का मार्ग खुल सकता है। महाभाग्य के फल से ऐसे सद्‌गुरु प्राप्त होते हैं। माया के दास को गुरु के रूप में सजाकर भोगबुद्धि के द्वारा गौरसुन्दर के निकट नहीं पहुँचा जा सकता। श्रीगौरसुन्दर इस जगत् में प्रकटलीला में न रहने पर भी यदि निरन्तर निष्कपट साधु–गुरु के संग में रहा जाय, उनकी चित्तवृत्ति में अपनी चित्तवृत्ति को dovetailed (संलग्न) कर सकें, उनकी इच्छा के साथ अपनी इच्छा को मिला सकें, यदि ऐसे कृष्णतत्त्ववित् श्रीगुरुदेव के पादपद्म में शरणागत हो सकें, उनके चरणों में पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर सकें, तो ऐसे उत्तम संग, सेवा एवं आनुगत्य के द्वारा ही हमारा मंगल हो जाएगा।

प्रश्न 280—असली गुरु हम कैसे पा सकते हैं?

उत्तर—आत्मकल्याण के लिए प्रथम बात है—सद्‌गुरुपदाश्रय। सभी लोग भगवान की इच्छा से अपने अपने

अधिकार के अनुरूप गुरु प्राप्त करते हैं, जिस प्रकार ख्रीष्टान (ईसाई) एवं मुसलमानों ने यीशु और मोहम्मद को पाया। परन्तु अपने भाग्य के अनुसार कुछ लोग किसी विषयी कुलगुरु को गुरु के रूप में ग्रहण करते हैं, जिसके फलस्वरूप संसार में आसक्त हो जाते हैं। किन्तु यदि मेरा भाग्य अच्छा हो, यदि मैं निष्कपट रूप से सद्गुरु का अनुसन्धान करता हूँ, सद्गुरु प्राप्त करने के लिए भगवान से प्रार्थना करता हूँ, तो भगवान की कृपा से इसी जन्म में अवश्य ही सद्गुरु प्राप्त करूँगा और उनके श्रीचरणकमलों का आश्रय ग्रहणकर धन्य एवं कृतार्थ हो जाऊँगा। शास्त्र कहते हैं—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु कृष्ण प्रसादे पाय भक्तिलता-बीज॥
कृष्ण यदि कृपा करेन कोन भाग्यवाने।
गुरुअन्तर्यामी रूपे शिखाय आपने॥
गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरु रूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे॥
यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताहार प्रकाश॥
शिक्षा गुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ एइ दुइ रूप॥
जीवे साक्षात् नाहि ताते गुरु चैत्त्यरूपे।
शिक्षागुरु हन कृष्ण महान्त स्वरूपे॥

(चैतन्य चरितामृत)

अर्थात् ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते-करते गुरु एवं कृष्ण की कृपा से किसी भाग्यवान् जीव को भक्तिलता का बीज प्राप्त होता है। यदि कृष्ण किसी भाग्यवान् व्यक्ति पर कृपा करते हैं, तो स्वयं ही गुरु-अन्तर्यामी रूप में सिखाते है। शास्त्रों के प्रमाणानुसार गुरु कृष्णरूप होते हैं। गुरु के रूप में ही कृष्ण भक्तों पर कृपा करते हैं। यद्यपि मेरे गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभु के दास हैं, तथापि मैं उन्हें उनका प्रकाश ही मानता हूँ। मैं शिक्षागुरु को तो कृष्ण के स्वरूप मानता हूँ।

हे कृष्णचन्द्र, कृपापूर्वक मुझे सेवक के रूप में

ग्रहण कीजिए। गृहकर्त्ता अभिमान से या भोक्ता अभिमान से मैंने जिस अनित्य संसार की सेवा या जगत् की सेवा की उसे और नहीं करूँगा—जब जीव निष्कपट रूप में भगवान से कातरता पूर्वक ऐसी प्रार्थना करता है, तो दयामय श्रीकृष्ण महान्तगुरु के रूप में उसके समक्ष आविर्भूत होते हैं।

सद्गुरु से दिव्यज्ञान प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त न होने पर भगवान की सेवा का अधिकार प्राप्त नहीं होता। यह दिव्यज्ञान प्रदान करने की सामर्थ्य किसी मनुष्य या देवता में नहीं है। इसीलिए सद्गुरु की इतनी आवश्यकता है।

प्रश्न 281—आपके मिशन का उद्देश्य क्या है?

उत्तर—हमें मिशन बनाने की आवश्यकता बिल्कुल नहीं थी। क्योंकि मनुष्य गलत मार्ग पर चल रहे हैं, इसलिए हमने अपनी भगवद् सेवा को मिशन के कार्य में प्रयोग किया है। मनुष्य समाज को विपरीत मार्ग से उद्धार करने के लिए ही हमने मिशन बनाया है। इस प्रकार भोगमय पृथ्वी का सार्वभौम पद यदि हम करोड़ों बार भी पायें, तथापि हम उसे मलमूत्र की भाँति विसर्जन कर सकते है। मनुष्य जाति गलत दिशा से निकलकर गौरसुन्दर के पादपद्म जो समस्त मंगलों के भी मूल हैं, उनमें प्रतिष्ठित हो, इसके लिए ही हमारा यह छोटा सा प्रयास है। श्रीचैतन्यदेव ने जो बात कही हैं उसमें यदि एक लेश मात्र भी कुछ इधर-उधर होता है, वे ब्रह्मा, शिव, वायु, वरुण जो कोई भी क्यों न हो, जितने भी बड़े धर्म प्रचारक हो, धर्मनेता हो, वे उसी परिमाण में असुविधा में पड़े हुए हैं। जो चैतन्यदेव के दास हैं, वे परम वास्तव सत्य के उपासक होते हैं। उन्होंने श्रीगौरांगदेव का ऐसे अपार सौन्दर्य का दर्शन किया है कि जगत के Giant intellect या लोग जिसे बहुत बड़े धर्मप्रचारक के रूप में सजा रहे है, उनकी कोई भी बात चैतन्य दासों को लुब्ध या शंकित नहीं कर सकती। गौर भक्तों के पास विषय विषधर के दाँत भी टूट जाते हैं। श्रीगौरसुन्दर की वाणी ने जिसके कानों में प्रवेश किया है, जगत की किसी प्रकार की छलना उन्हें वञ्चित नहीं कर

सकती।

पातंजलि का योगपथ, कृत्रिम रूप में जितेन्द्रिय होने की चेष्टा अथवा मेनका, उर्वशी आदि विषय समूह भगवद्भक्तों को कभी भी लुब्ध नहीं कर सकते। Pessimistic view (निराशावाद) लेकर दुःख से मुक्त होने को जो एक बहुत बड़ी बात मानते हैं, उनसे तो भगवद्भक्तों के जूतावाहक (भृत्य) परिमुक्त हैं। भगवद् भक्त Privation from necessaries of life (जीवन की आवश्यकताओं से दूर रहने) को बहुत बड़ी बात नहीं मानते। तांती (जुलाहे) की भाँति कानों में रूई देकर बाह्य जगत के ज्ञान से दूर रहना उनके लिए आवश्यक नहीं है। वे अपनी प्रीति के कामुक नहीं हैं। अपनी प्रीति तो मुझे नरक ले जाएगी, क्योंकि मैं तो रोगग्रस्त पशु हूँ। भगवान की प्रीति ही मेरा काम्य है। Worldly acquisition (जागतिक लालसा) लेकर गौरसुन्दर का चरणाश्रय नहीं होता। उन समस्त वस्तुओं को उनके चरणकमलों की सेवा में लगाने से ही मंगल होता है।

निर्जन में रहकर गौर–निताई का नाम करूँगा—यह भी अन्य एक प्रकार की कपटता और आत्मसुख वाञ्छा या प्रतिष्ठा की आशा है। समस्त इन्द्रियाँ ही शत्रु हैं। श्रीचैतन्यदेव द्वारा प्रचारित नित्य आत्मवृत्ति भक्तिपद को इन सब शत्रुओं ने कोटि–कण्टकरुद्ध बना दिया है। लोग फल्गुभोग, फल्गुत्याग, अन्याभिलाष कर्म–ज्ञान–योगविद्ध कपटभक्ति को ही भक्ति ही मान रहे हैं किन्तु मैं अधोक्षज भगवान की सेवा करूँगा। मैं अपने प्रच्छन्न या स्पष्ट इन्द्रियतर्पणकारी कुत्ते की सेवा कर भंगी नहीं बनूँगा, गधे की सेवाकर धोबी नहीं बनूँगा, ईट–पत्थरों की सेवाकर इंजीनियर नहीं होऊँगा, जिनका ऐसा विचार है, वे ही महाप्रभु की प्रीति पा सकते हैं, भक्तिपथ का आश्रय ग्रहण कर सकते हैं। श्रीगौरसुन्दर प्राचीर जातीय अचित् वस्तु नहीं हैं। हममें जो नैसर्गिक अनादि वैमुख्यजनित बुद्धि आ गयी है, श्रीगौरसुन्दर की कृपा से ही उससे हमारा उद्धार हो सकता है, अन्य कोई उपाय नहीं है। अन्यान्य लोग यदि कृपा करने का अभिनय करते हैं, तो उन्हें वञ्चक जानना

होगा। वे तो सब समय गौरनाम कीर्तन करते-करते मेरे सम्मुख नहीं आते हैं, वे तो गौरनाम, गौरलीला का गान नहीं करते, वे किस प्रकार गुरु का कार्य कर सकते हैं? जो व्यक्ति जागतिक तुच्छ वस्तु में आसक्त हैं, वे पाठशाला के गुरु का कार्य कर सकते हैं, किन्तु पारमार्थिक गुरु का कार्य नहीं कर सकते।

किवा विप्र, किवा न्यासी, शूद्र केने नय।
जेई कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ गुरु हय॥

गुणजात जगत् की जो क्रिया मुझे असुविधा में डाल रही है, ऐसी असुविधा के हाथ से मेरा उद्धार करने के लिए जो मर्मान्तिक आघात प्रदानकर मेरे हृदय ग्रंथिका छेदन कर सकते हैं, जो निष्कपट रूप में दया कर सकते हैं, जो मेरी खुशामद करने के लिए तैयार नहीं हैं, किन्तु निष्कपट रूप में मुझ पर दया कर सकते हैं, वे ही गुरुदेव हैं।

प्रश्न 282—हमारा क्या कर्तव्य हैं?

उत्तर—हम जगत में सभी से कहते हैं—For the time being you stop and lend your submissive and regardful ear. आपलोग कृपापूर्वक अपनी समस्त प्रकार की धारणाओं और बातों को दूर रखकर थोड़ा बहुत श्रौत कथा (अर्थात् साधुओं के मुख से शास्त्र की बातें) श्रवण करें। मैं Transcendental sound का पक्षपाती हूँ। हमने जो Rubbish (गन्दी वस्तुएँ) संग्रह की हैं, उनका बोझ सिर पर रखकर चलने से ब्रज के मार्ग में भगवान की ओर एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकते। इस जगत में जो Giant Intellect (परम बुद्धिमान) के रूप में प्रसिद्ध हैं, वे अपनी बातों को कुछ समय के लिए बन्दकर Transcendental sound सुनें। Empiricism must never medium. भक्ति Suggestive वस्तु नहीं है, 'तुक लग गया तो ठीक है, नहीं तो कोई बात नहीं' ऐसी वस्तु नहीं है। वह तो Positive है, वास्तविकता का निर्देश कर देती है। Personal Godhead (भगवान) के आनुगत्य का विचार ही भक्ति है।

प्रश्न 283—वैष्णव कौन हैं?

उत्तर—

कनक कामिनी, प्रतिष्ठा बाघिनी,
छाड़ियाछे यारे सेइ त वैष्णव।
सेइ अनासक्त सेइ शुद्धभक्त,
संसार तथाय पाय पराभव॥

अर्थात् कनक, कामिनी और प्रतिष्ठारूपी बाघिनी ने जिसे छोड़ दिया है, वही वैष्णव हैं, वही अनासक्त हैं और वही शुद्धभक्त हैं। संसार भी उनके सामने पराजित हो जाता है।

प्रश्न 284—हमारा विचार कैसा होना चाहिए?

उत्तर—जो श्रीचैतन्यमहाप्रभु से विमुख हैं, ऐसे शरीर सम्बन्धीय आत्मीय बन्धु बान्धवों को पराया समझना चाहिए। दुःसंग का परित्यागकर सत्संग करना चाहिए। साधुसंग किये बिना दुःसंग का सम्पूर्णरूप से त्याग नहीं किया जा सकता। जो श्रीचैतन्यदेव के भक्तों से विमुख, उदासीन या विद्वेषी हैं, उन्हें चैतन्य विमुख समझें।

जो भगवान की कथाओं के श्रवण-कीर्तन में ही दिन व्यतीत करते हैं, वे ही साधु या भक्त हैं। परन्तु जो कृष्ण के इन्द्रियतर्पण या विलास कथाओं का त्यागकर सांसारिक बातों या निर्विशेष विचारों के अनुशीलन में ही दिन व्यतीत करते हैं, वे ही असाधु या अभक्त हैं। जगत मेरे भोग की वस्तु है, मैं ही भोगी हूँ यही जगद्दर्शन है। किन्तु वास्तव में यह जगत तो जगन्नाथ का अवस्थान क्षेत्र (अर्थात् जगन्नाथ की भोग की वस्तु) है।

श्रीगुरुपादपद्म को कृष्णप्रेष्ठ या नित्यसिद्ध ब्रजवासी जानने पर ही ब्रज में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। नित्यसिद्ध महाजन श्रीगुरुपादपद्म का अनुगमन और अनुसरण करना ही हमारा कर्तव्य है। तभी ब्रज में जा सकते हैं किन्तु स्वतन्त्र होकर (भगवद् वस्तु को) माप लेने का विचार आने से ही संसार होगा, ब्रज में नहीं जा सकेंगे। निष्कपट रूप से हरिभजन करने के लिए हमें जी-जान से चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि हमारे पास और अधिक दिन नहीं हैं। हमें इस जगत से चले जाना पड़ेगा।

आश्रयविग्रह श्रीगुरुपादपद्म के आनुगत्य में ही सेवा करनी होगी। सेवा बुद्धि या सेवा की चिन्ता प्रबल रहने पर अन्य किसी प्रकार की चिन्ता मन में आ ही नहीं सकती। श्रीरूपानुगवर श्रीगुरुपादपद्म की चरणधूलि हमारी एकमात्र आकांक्षा का विषय होने पर ही हमारा मंगल हो सकता है। श्रीगुरु–गौरांग के सुख की ओर हमारा तीव्र लक्ष्य रहने पर अपने सुख की इच्छा जीव को विपत्ति में नहीं डाल सकती। हरिभजन के उद्देश्य से ही हमें जीवन निर्वाह करना चाहिए। बाधा–विपत्ति आने पर कभी भी भजन नहीं छोड़ना चाहिए।

प्रश्न 285—गौड़ीय मठ क्या कहता है?

उत्तर—Back to God and Back to Home is the message of Gaudiya Math. भगवान के पास चलो, अपने घर लौट चलो यही गौड़ीय मठ का संदेश है।

शुद्धभक्ति की बातें—महाप्रभु के उपदेशों का जगत में प्रचार करने के लिए ही गौड़ीय मठ का अवतार हुआ है। महाप्रभु के अमूल्य उपदेश और शिक्षाओं का प्रचार ही गौड़ीय मठ के प्रचार का विषय है। गौड़ीय मठ के प्रचारक श्रीमद्भागवत की कथाओं का स्वयं आचरणकर विश्व में प्रचार करते हैं। वे आचरणशील प्रचारक हैं।

प्रश्न 286—भगवान का दर्शन कैसे होगा?

उत्तर—जो सब समय भगवान की उपासना में लगे रहते हैं, ऐसे निष्किञ्चन महापुरुषों का आश्रय ग्रहण करने पर ही अर्थात् जब वे अपने श्रीहस्तकमल से हमारे नेत्रों को खोल देंगे, तभी हमें भगवान का दर्शन हो सकता है।

जो सब समय भगवान का भजन करते हैं, जो पग–पग पर भगवान की सेवा करते हैं, जो अपना सर्वस्व प्रदान कर भगवान की सेवा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं करते, ऐसे किसी साधु–गुरु की सेवा ही हमें भगवान की अनुभूति करा सकती है।

कृष्ण तो भक्तों की अपनी सम्पत्ति है। भक्त ही कृष्ण को दे सकते है। कृष्ण का दर्शन करा सकते है।

भक्तों को प्रसन्न करने पर ही सिद्धि होगी।

भोगोन्मुख चित्त में भगवान की अनुभूति नहीं होती, सेवोन्मुख चित्त में कृष्ण की अनुभूति या कृष्ण का दर्शन प्राप्त होता है। स्वयं को भगवान का सेवक जानकर सब समय श्रीगुरु–गौरांग की सेवा करते–करते ही सेव्य (कृष्ण) की अनुभूति होती है। सेवा पथ से ही सेव्य का साक्षात् दर्शन सम्भव है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न 287—कृष्ण को कौन प्राप्त करेगा?

उत्तर—जिसका ऐसा दृढ़ विश्वास है कि कृष्ण अवश्य ही मेरी रक्षा करेंगे, उसी की सिद्धि होगी अर्थात् वह कृष्ण को प्राप्त करेगा। जो सम्पूर्ण रूप से भगवान के ऊपर निर्भर रहते हैं, जो निरन्तर भगवान की कथाओं की चर्चा करते हैं, उनके चरणकमलों में शरण ग्रहण करना ही एकमात्र रक्षा प्राप्ति का उपाय हैं। वे पतितपावन होते हैं। अतः उनकी शरण ग्रहण करने से वे अवश्य ही मेरी रक्षा करेंगे। उनके श्रीचरणों में आश्रित व्यक्ति ही रक्षा पायेगा, किन्तु निराश्रय व्यक्ति रक्षा नहीं पायेगा। पूर्ण शरणागत होने पर कृष्ण की पूर्णकृपा अवश्य ही होगी।

प्रश्न 288—क्या कर्ताभिमानी व्यक्ति का मंगल होता है?

उत्तर—कर्ममार्ग में विचरण करनेवाला व्यक्ति ही कर्ता है। कर्म अमंगल का मार्ग है। उसमें मंगल या भक्ति का स्थान ही नहीं है। हमलोग कर्म को बड़ा मानकर अमंगल की ओर दौड़ रहे हैं। सत्कर्म करके हम सबका प्रिय बनना चाह रहे हैं। अधिक से अधिक परिमाण में सांसारिक कर्म करके हम आत्मीय स्वजनों की प्रीति प्राप्त करने में व्यस्त हैं, किन्तु इससे हमारा मंगल नहीं होगा, संसार से हमारा उद्धार नहीं होगा। इसीलिए भगवान के भक्त कृपापूर्वक कह रहे हैं—भगवान की सेवा करना ही हमारा एकमात्र कर्तव्य है। देवता, पशु, पक्षी एवं मनुष्य आदि सभी का कर्तव्य भगवान की सेवा करना ही है। किन्तु भक्तों की बात न सुनकर हमलोग सोच रहे हैं कि जब मैं पिता

बना हूँ, तो पुत्र-कन्या की सेवा करना, उनकी पढ़ाई-लिखाई आदि की व्यवस्था करना ही मेरा काम है। जब पुत्र हुआ हूँ, तो माता-पिता की सेवा करना ही मेरा काम है। इस प्रकार के बहुत से संकल्प हमारे हृदय में उदित हो रहे हैं। इसी का नाम है—अवैष्णवता, भगवद् बहिर्मुखता या माया की दासता।

प्रश्न 289—श्रीनाम में हमारी रुचि कैसे होगी?

उत्तर—मंगलाकांक्षी साधक श्रीनाम के चरणकमलों में स्वयं को अर्पण कर देते हैं। वे दृढ़तापूर्वक जानते हैं कि श्रीनामसंकीर्तन ही सर्वार्थसिद्धि प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। जिस दिन हमारी मन्त्रसिद्धि होगी, उसी दिन हमारे मुख में सदैव ही हरिनाम नृत्य करता रहेगा।

जो कृष्णकीर्तन करते हैं, ऐसे मठवासी भक्तों की सेवा से विमुख होकर भजन का अभिनय करने पर हमारा मंगल नहीं होगा। आदरपूर्वक मठवासी भक्तों की सेवा करने पर ही श्रीनामकीर्तन में अधिकार प्राप्त हो सकता है, नाम-भजन में रुचि बढ़ेगी। किन्तु ऐसा न कर यदि हम अपने आत्मीय-स्वजनों की सेवा में ही लगे रहेंगे, तो हरिनाम नहीं होगा। किन्तु गृहस्थ-भक्त यदि साधुसंग एवं भजन के प्रभाव से कर्ता-अभिमान और गृहासक्ति से मुक्त होकर घर में वास कर सकते हैं, तथा घर में रहने वाले लोगों को एवं समस्त वस्तुओं को अपने भोग की वस्तु न समझकर भगवान की सेवा की वस्तु समझ सकें, तो उनका भी मंगल होगा।

साधुसंग में ही हरिनाम होता है। असाधुओं के संग में हरिनाम नहीं होता। साधुसंग, हरिकथा श्रवण तथा हरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा में उदासीन रहने पर नाम नहीं होगा। इसलिए गृहस्थ हो या मठवासी, सभी के लिए इन तीन विषयों में चेष्टारत रहना आवश्यक है। तभी मंगल हो सकता है, हरिनाम में रुचि हो सकती है, चेतन का उन्मेष होगा, अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हुआ जाएगा।

प्रश्न 290—शुद्धसेवा की प्राप्ति एवं भगवान का दर्शन कब होगा?

उत्तर—जिस दिन हम यह उपलब्धि कर पायेंगे कि सेवाविग्रह श्रीगुरुदेव श्रीगौरांग महाप्रभु से अभिन्न हैं, उसी दिन वास्तव में ही हमें भगवान की सेवा प्राप्त हो जाएगी। उस समय धर्म, अर्थ, काम यहाँ तक कि मुक्ति भी तुच्छ प्रतीत होगी। जब हम महान्त गुरुदेव को श्रीगौरांगदेव के निजजन के रूप में अनुभव करते हैं, तभी श्री राधागोविन्द की लीलाकथाएँ हमारे निर्मल हृदय में स्फुरित हो सकती हैं। तभी भगवान का दर्शन भी सम्भव हैं।

प्रश्न 291—पशु किसलिए मनुष्य होते हैं?

उत्तर—पशु हरिभजन के लिए मनुष्य होते हैं। केवल पशु ही क्यों देवता भी हरिभजन के लिए मनुष्य जन्म प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। देवताओं के लिए भी दुर्लभ ऐसा मनुष्य जन्म पाकर यदि हम पशुओं की भाँति आहार-विहार में ही व्यस्त रहें, संसार में प्रमत्त होकर यदि हमने हरिभजन न किया अथवा हरिभजन के नाम पर विषयी का विषयी ही रहा, तो हमारा जीवन व्यर्थ ही गया। मनुष्य=जन्म पाकर भी हमारा कोई लाभ नहीं होगा।

यदि हरिभजन ही न करूँ तो जीवित रहकर क्या होगा? क्योंकि हरिभजनहीन जीवन तो व्यर्थ है। उसके फल से मुझे जन्म जन्मान्तर तक दुःख भोगना पड़ेगा।

प्रश्न 292—भक्तलोग क्या कहते हैं?

उत्तर—श्रीभगवान के भक्तलोग कहते हैं—हे जीव! तुम भगवान के सेवक हो। इस जगत के साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि तुम भगवान के सेवक हो, अतः भगवान की सेवा करो, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ मत करो। यदि हरिसेवा के अतिरिक्त तुम अन्य कुछ करोगे, तो तुम्हें अशान्ति ही प्राप्त होगी।

हे जीव, हरिसेवा के नाम पर अपना इन्द्रियतर्पण मत करो। याद रखो कि कृष्ण के इन्द्रियतर्पण का नाम ही सेवा है। जिस कार्य से तुम्हारा इन्द्रियतर्पण हो या तुम्हारे बहिर्मुख

आत्मीय-स्वजनों का सुख हो, उस कार्य को करने का नाम सेवा नहीं है। उसे सेवा मानने का अर्थ है—अपने को वञ्चित करना। गृहसेवा को भगवान की सेवा मानकर भूल मत करना। भगवान का आश्रय ग्रहण करो, माया की सेवा में और समय नष्ट मत करो। क्योंकि माया की सेवा करने से तुम्हारा कल्याण तो होगा ही नहीं, अपितु दिन प्रतिदिन तुम्हारी संसार में आसक्ति बढ़ती ही जाएगी, जिसके फलस्वरूप तुम्हें भगवान की प्राप्ति नहीं होगी। तुम भगवान के लिए व्यस्त हो जाओ, तभी तो भगवान को पाओगे। इसीलिए कह रहा हूँ—चतुर बनो, समस्त बहिर्मुख लोगों की वञ्चनाकर कृष्ण की सेवा करो तभी श्रीगुरु-गौरांग तुम पर प्रसन्न होंगे।

प्रश्न 293—हृदय-मन्दिर में कौन भगवान की सेवा करते हैं?

उत्तर—शुद्धभक्त अपने हृदय मन्दिर में भगवान को प्रतिष्ठित करते हैं। वे 'भावे भावे हृदय भवने भावयेयं भवन्तम्' विचार में प्रतिष्ठित होते हैं। प्रहलाद आदि भक्तों ने भी हृदय में भगवान को प्रतिष्ठित कर उनकी सेवा की। भगवान का मन्दिर सब समय खोलकर नहीं रखा जा सकता, किन्तु हृदय-मन्दिर सब समय खुला रहता है। कनिष्ठ अधिकारी भक्त हृदय-मन्दिर में भगवान की सेवा की बात नहीं समझ सकता।

प्रश्न 294—गुरु कौन है और गुरुसेवा कैसे करनी चाहिए?

उत्तर—गुरु एवं वैष्णव अप्राकृत श्रीमन्दिर हैं। भगवान जहाँ-तहाँ पर प्रकाशित नहीं होते। वे गुरु एवं वैष्णवों के हृदय में ही अपने को प्रकाशित करते हैं। अनेक लोग भगवान का दर्शन करना चाहते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते गुरु के दर्शन से ही भगवान का दर्शन होता है। यदि श्रीगुरुपादपद्म नामक कोई वस्तु न रहे, तो भक्ति प्रारम्भ ही नहीं होती। गुरु ही कृष्ण के श्रीचरणकमलों के दर्शन में योगसूत्र हैं। कृष्ण अपने सबसे श्रेष्ठ सेवक या श्रेष्ठ

वैष्णव को इस जगत में भेजकर जिस अपार करुणा का परिचय देते हैं, उस करुणाशक्ति के मूर्तविग्रह ही श्रीगुरुपादपद्म हैं।

श्रीगुरुदेव हमारे परम आत्मीय हैं। इसलिए केवल सम्भ्रमपूर्वक केवल दूर रहकर कर्तव्यबुद्धि से गुरुसेवा करने से नहीं होगा, विश्रम्भपूर्वक अर्थात् दृढ़ विश्वास एवं प्रीतिपूर्वक गुरुसेवा करनी होगी। तभी मंगल होगा। हमारे लिए श्रीकृष्ण की अपेक्षा गुरु की प्रयोजनीयता अधिक है। श्रीगौरांगदेव समस्त गुरुओं के भी गुरु हैं। उन्होंने बताया है कि गुरु भगवान से अभिन्न होने पर भी भगवान के भक्तों में प्रधान हैं। उन भक्तराज कृष्णप्रेष्ठ गुरु को त्यागकर भगवान की सेवा नहीं होती। गुरुसेवा के अतिरिक्त जीव के मंगल का अन्य कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न 295—दिव्यज्ञान क्या है?

उत्तर—हम सेव्य हैं, हम कर्ता हैं, हम भोक्ता हैं—ये विचार ही अचिद्ज्ञान या अज्ञानता है। परन्तु हम अद्वितीय भोक्ता भगवान के भोग्य या सेवक हैं, यह उपलब्धि ही दिव्यज्ञान या चिन्मय-ज्ञान है।

प्रश्न 296—मनोबल कैसे होगा?

उत्तर—हम दुर्बल हैं। हमारे लिए मनोबल आवश्यक है। जीवन्त साधुओं के मुख से भगवान की वीर्यवती कथाओं का श्रवण करने से ही हमें मनोबल प्राप्त होगा। बलवान् साधुओं के संग के अतिरिक्त मनोबल प्राप्ति असम्भव है।

प्रश्न 297—हमारा मंगल कैसे होगा?

उत्तर—हम भगवान के सेवक हैं। इसलिए हमें भगवत्सेवा की ही आवश्यकता है। उसी से मंगल होगा। भगवत्सेवा से बढ़कर हमारा अन्य कोई कर्तव्य नहीं है।

हमें माया के संसार में प्रविष्ट न होकर कृष्ण के संसार में प्रविष्ट होना होगा, कर्ता न होकर सेवक होना होगा। तभी हमारा मंगल होगा।

प्रश्न 298—शरणागत भक्त लोग भिक्षा क्यों करते हैं?

उत्तर—भगवान जो कराते हैं, शरणागत-भक्त वैसा ही करते हैं। श्रीगौरसुन्दर के उपदेशानुसार सभी का कल्याण करने के लिए ही भक्त लोग द्वार-द्वार जाकर भगवान की सेवा के लिए भिक्षा करते हैं। उन्होंने जो सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति प्राप्त की है, वे उसे सभी को बाँटने के लिए ही, सभी को कृष्णसेवा-महोत्सव में आह्वान करने के लिए ही द्वार-द्वार पर जाते हैं। आत्मेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छा के वशीभूत होकर वे कहीं नहीं जाते। भक्तों की दया की तुलना ही नहीं है। सभी को भगवत्-उन्मुख करने के लिए ही वे सदा प्रचेष्टा करते हैं।

प्रश्न 299—हमारी संसार प्रवृत्ति कैसे कम होगी?

उत्तर—संसार तृणाच्छादित कूप (घास से ढके हुए कुँए) के समान है। इस संसारकूप में एक बार गिर जाने पर, फिर इससे बाहर निकलना बहुत ही कठिन है। भगवान की कृपा के बिना केवल अपनी चेष्टा से कोई भी इस संसारकूप से बाहर नहीं निकल सकता। **हम लोग कृष्ण के दास हैं, इस बात को भूलते ही हमें माया का दास होना पड़ेगा।** भगवान की सेवा ही भक्ति है और भोग की इच्छा अभक्ति। प्रणिपात, परिप्रश्न तथा सेवावृत्ति के साथ गुरु-वैष्णवों से कृष्ण की कथाओं का श्रवण ही इस अभक्ति को परित्याग करने का एकमात्र उपाय है। तभी संसार करने की प्रवृत्ति दूर होगी और श्रीकृष्णसंकीर्तन में रुचि होगी।

प्रश्न 300—शरणागत का विचार किस प्रकार का होता है?

उत्तर—ऐकान्तिक भक्त भगवान के समस्त विधानों को सिर झुकाकर स्वीकार करते हैं। भगवान की व्यवस्था में चंचलता प्रकाश करने से उसमें श्रद्धा का अभाव और अन्याभिलाष प्रमाणित होता है।

भगवत् कृपा बाह्य दृष्टि से दण्ड या निष्ठुरता प्रतीत

हो अथवा सम्पद् से युक्त हो, भक्त उस ओर न देखकर ऐकान्तिक भाव से भगवान के शरणागत रहते हैं। जागतिक किसी प्रकार की असुविधा उसे शरणागति से कृष्ण को रक्षक के रूप में वरण करने से बिन्दुमात्र भी हटा नहीं सकती।

भगवान सर्वद्रष्टा हैं; किन्तु बद्धजीव का दर्शन विभिन्न प्रकार की बाधाओं से युक्त है। कार्यतः भगवान के विधान में असन्तोष या चंचलता प्रकाश करने से अपने अमंगल का ही स्वागत किया जाता है। भगवान के विधान में सन्तुष्ट होकर अनुक्षण हरिसेवा के अतिरिक्त शरणागत व्यक्ति का कोई दूसरा विचार नहीं होता।

प्रश्न 301—किस विषय में यत्नवान् होना चाहिए?

उत्तर—आत्मा की नित्य वृत्ति को जाग्रत कर भगवान की सेवा प्राप्ति के लिए यत्न करना चाहिए। ब्रजेन्द्रनन्दन की सेवा प्राप्ति के लिए ही सदैव यत्नवान् होना होगा। कृष्ण जिनपर कृपा करते हैं, उनकी भगवान के अतिरिक्त अन्य कोई सम्पत्ति या आश्रय नहीं रहता। जन्म, ऐश्वर्य, श्रुत (पाण्डित्य) और श्री (सौन्दर्य) के गर्व से गर्वित होने से उनकी कृपा प्राप्त नहीं होगी, तब संसार में ही वास होगा।

श्रेयःपन्था में परिचालित होने से प्रेयःपन्था अच्छी नहीं लगती। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति श्रेयःपन्था को ग्रहण कर मृत्युकाल तक सत्संग में भगवान का भजन करते हैं। जगत की सभी वस्तुएँ भगवान की हैं। उसमें लोभ करने से ही असुविधा में हम पड़ जायेंगे। जो भगवान की कथा के श्रवण से विमुख हैं, वे ही संसार में आसक्त या आबद्ध रहते हैं। वे मनोरथ में विचरण कर दुर्दैव में पड़ते हैं।

मैं वैष्णव हो गया हूँ—इस प्रकार की दुर्बुद्धि छोड़कर दीन होकर कृपा-प्रार्थना करते-करते सेवा प्राप्ति के लिए यत्न करना होगा। गुरु-वैष्णव-भगवान की कृपा होने पर ही भगवान की सेवा प्राप्त करूँगा। तब और अहंकार नहीं रहेगा। मानव काम-क्रोध के वशीभूत होकर दाम्भिक होता है। दाम्भिक होने से गुरु-वैष्णवों के चरणकमलों का

आश्रय अनावश्यक लगने लगता है। उससे बद्धदशा की फाँसी (पाश) और भी दृढ़बद्ध होती है।

सब समय साधुसंग में रहना चाहिए। सत्संग को छोड़कर हम बच नहीं सकते। सत्संग से अलग रहकर निर्जन में मानसिक चिन्ताधारा को लेकर रहने से प्रभु होने की दुर्बुद्धि प्रबल होती है। तब सावधान नहीं रहने से साधु-गुरु की आज्ञा के अनुवर्ती न रहने से विपद में पड़ जायेंगे। निराश्रय होने पर ही माया उसे पकड़ लेगी अपना दास बनाकर संसार में घुमायेगी।

प्रश्न 302—गुरुकृपा और कृष्णकृपा क्या एक है?

उत्तर—गुरुकृपा और कृष्णकृपा अलग नहीं हैं। गुरुदेव कृष्णभजन अतिरिक्त और कुछ नहीं करते। और कृष्ण भी अपने प्रेष्ठजन की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी की सेवा को स्वीकार नहीं करते। गुरु और कृष्ण दोनों ही परस्पर प्रेमासक्त हैं, एक-आत्मा हैं, दोनों ही परस्पर प्राणों से प्रिय हैं। श्रीगुरुदेव कृष्ण-भक्तिमान् हैं और कृष्ण भक्त-भक्तिमान् हैं। सभी की सेवाएँ गुरुदेव द्वारा ही कृष्ण के चरणों में निवेदित होती हैं। जिनकी नित्यकाल सेवा करनी होगी, वही गुरुदेव ब्रह्माण्डवासी साधारण जीव नहीं हैं, वे पतित जीव के उद्धार के लिए कृष्ण की इच्छा से प्रपंच (संसार) में अवतरित हो कर भाग्यवान् जीव को भगवत् सेवा की शिक्षा देते हैं। उनके द्वारा ही कृष्ण का प्रसाद हमारे निकट पहुँचता है।

प्रश्न 303—असुविधा होने पर भक्त क्या करते हैं?

उत्तर—असुविधा में डालकर भगवान हमारी परीक्षा करते हैं। जो यथार्थ भगवत् सेवक हैं, वे किसी भी अवस्था में विचलित न होकर समस्त अवस्थाओं में ही काय-मनोवाक्य से भगवान की सेवा करते हैं। प्राकृत भोग उनको स्पर्श नहीं कर सकता। वे सदैव सेवा में ही अवस्थित रहते हैं। वे जानते हैं—सेवा ही मेरा जीवन है, सेवा ही मेरी सत्ता है, सेवा ही मेरा कर्म है—इसके अतिरिक्त जो कुछ है सभी मृत्यु या संसार है।

प्रश्न 304—क्या किसी को वैष्णव किया जा सकता है?

उत्तर—वैष्णव हुआ या किया नहीं जाता। विश्व सभी स्वरूपतः वैष्णव अर्थात् विष्णु के सेवक हैं—इस स्वरूप को साधुसंग में अनुभव किया जाता है।

प्रश्न 305—कब ब्रज में जाना होगा?

उत्तर—जब गुरुदेव को गदाधर पण्डित से अभिन्न समझेंगे, तभी ब्रज में जाने का मार्ग प्रशस्त होगा। और जब सोचने लगे कि वे वैसे नहीं हैं, तभी मुश्किल है।

बुद्धिमान का कार्य है—महाजन का अनुगमन और अनुसरण। स्वयं नाप लूँगा—यह विचार विश्वदर्शन का विचार हैं—भोग का विचार है। इससे संसार प्राप्त होगा, ब्रज में नहीं जा सकते। भोगबुद्धि से विश्वदर्शन असुविधा की बात है। हम विश्व के ऊपर प्रभुत्व करेंगे—इस भावना से प्रेरित होकर जो विश्वदर्शन है, वह हमारे बन्धन का कारण है। विश्व हमारी इन्द्रियों को तृप्त करे—इस विचार से ही संसार की उत्पत्ति है।

प्रश्न 306—कर्मी लोगों की चित्तवृत्ति किस प्रकार की है?

उत्तर—एक व्यक्ति जल में डूब रहा है, Altruistic (परहितवादी) कर्मों की चिन्ताधारा है कि उस drowning man (डूब रहे व्यक्ति) के जूते और कुर्ते को बचाना। पश्चिमी देशों के धर्म में भी मनुष्य के आवरण का उपकार करना ही बड़ी बात है। मनुष्य का उपकार करने का अर्थ अनेक लोग समझते हैं कि मनुष्य के आवरण का उपकार करना। जीवात्मा के ऊपर जो देह और मनरूप स्थूल एवं सूक्ष्म दो आवरण हैं, मानव जाति उन दोनों आवरणों के क्षणस्थायी और विश्वासघातक उपकार को ही उपकार मानती है। इसलिए हमारे एक जर्मन भक्त ने कहा है—मनुष्य डूब रहा है तो डूबने दो, मनुष्य की आत्मवृत्ति अधःपतित हो रही है तो होने दो, परन्तु मनुष्य की देह और मन के

भोगों की आपूर्ति कर उसके जूते और कुर्ते को बचाने को ही जगत में तथाकथित परहितवादी कर्मी सम्प्रदाय के मनुष्य उपकार मानते हैं। कितने दुःख की बात है।

प्रश्न 307—महाप्रभु के संगी और भक्त क्या एक बात है?

उत्तर—नहीं। संगी अर्थात् सम्यक् रूप से जो गमन करते हैं, उनको ही संगी कहा जाता है। जो निरन्तर संग नहीं करते, उनको संगी नहीं कहा जाता, वे महाप्रभु के भक्त हो सकते है। संगी का अर्थ पार्षद है। श्रीनरोत्तम ठाकुर महाप्रभु के प्रकट काल में आविर्भूत न होने पर भी वे महाप्रभु के संगी हैं। क्योंकि वे महाप्रभु के मनोभीष्ट को पूर्ण करने के लिए जगत में अवतीर्ण हुए थे। वे नित्यकाल महाप्रभु की सेवा में मत्त हैं—महाप्रभु के हृदय के भाव में विभावित हैं। वे विश्रम्भ भाव के परिपोषक हैं। अतः ठाकुर महाशय नित्यसिद्ध हैं।

प्रश्न 308—साधन क्रिया और साधन भक्ति क्या एक हैं?

उत्तर—नहीं। साधन क्रिया का प्रभाव कुछ भी आत्मा के ऊपर नहीं होता। साधन क्रिया चिदाभास मन की भूमिका पर ही होती है। कालाधीन हरिवैमुख्य-नाशिनी साधनक्रिया और नित्य साधनभक्ति (शुद्धभक्ति) में प्रकार भेद है। भक्ति के जिन सभी अंगों के याजन द्वारा अनर्थनिवृत्ति करने की चेष्टा की जाती है, वही साधन क्रिया है। अनर्थ दूर होने से सेवावृत्ति, शुद्धभक्ति या साधन भक्ति स्वतः ही प्रकाशित होती है।

साधन क्रिया आत्मा के ऊपर कार्य नहीं करती। किन्तु साधन भक्ति आत्मा की भूमिका पर नित्य क्रियावती है। चिदाभास मन के ऊपर ही साधनक्रिया प्रयुक्त होती है। आत्मा के ऊपर ही साधन क्रिया कभी भी प्रयुक्त नहीं हो सकती। आत्मधर्म—आत्मा की वृत्ति या स्वभाव ही भक्ति है। साधन आदि मन को निग्रह करने के लिए हैं। मनोधर्म का निग्रह होने पर आत्मवृत्ति विकसित होती है। आत्मवृत्ति

में साधन भक्ति प्रकाशित होने पर जीव क्रमानुसार भाव और प्रेमभक्ति में आरूढ होता है। साधन भक्ति की परिपक्व अवस्था में ही क्रमशः भावभक्ति और प्रेमभक्ति का प्रकाश होता है, जिस प्रकार एक आम की अपक्व, अर्द्धपक्व और पक्व अवस्था है। परन्तु साधन क्रिया जातीय वस्तु नहीं हैं। साधनभक्ति और साधन क्रिया के परस्पर सम्बन्ध और भेद को न समझ पाने के कारण जगत में विभिन्न प्रकार के कलह की सृष्टि हुई है और हो रही है।

प्रश्न 309—गुरु के साथ हमारा अन्तर कहाँ पर है?

उत्तर—मैं लघु (छोटे) से भी लघु उससे भी लघु हूँ; और जो सदैव बृहत् (भगवान) की सेवा करते हैं, वे गुरुदेव बृहत् (बड़े) से भी बृहत् उससे भी बृहत् हैं।

प्रश्न 310—क्या किसी वंश में भक्त का जन्म होने पर उसी वंश का कुछ मंगल होता है?

उत्तर—जिस कुल में महाभागवत आविर्भूत होते हैं, उस कुल के आगे और पीछे की सौ पीढ़ियाँ तर जाती हैं। मध्यम भागवत (वैष्णव) आविर्भूत होने पर ऊर्ध्व और अधस्तन चौदह पीढ़ियाँ उन्नत हो जाती हैं। और कनिष्ठ भागवत (वैष्णव) आविर्भूत होने पर ऊर्ध्व और अधस्तन तीन पीढ़ियाँ उन्नत हो जाती हैं।

प्रश्न 311—भक्तगण नीच कुल में क्यों आविर्भूत होते हैं? भक्तों का तो कर्मफल नहीं है, तो भक्तगण मूर्ख, रोगग्रस्त के रूप में क्यों दिखाई देते हैं?

उत्तर—भक्त कभी भी कर्मफल के लिए बाध्य नहीं हैं। भगवान की इच्छा से ही उनकी जन्म आदि लीलाएँ होती हैं। जो देखा जाता है कि भक्त नीच कुल में आविर्भूत होते हैं, साधारण आँखों के लिए वे मूर्ख रोगग्रस्त आदि के रूप में दिखाई देते हैं, उसका भी महत् उद्देश्य है। लोग यदि देखेंगे कि भगवद् भक्त केवल उच्च कुल में ही आविर्भूत होते हैं, बलवान् और जागतिक पण्डित रूप में विराजित रहते हैं, तो वे निरुत्साह हो जायेंगे। इसलिए

करुणामय भगवान सभी लोगों के मंगल के लिए विभिन्न श्रेणी के लोगों में अपने भक्तों को आविर्भूत कराकर जीवों के प्रति दया करते हैं। पालित शिक्षित हथिनी को भेजकर जंगली हाथी को पकड़ने की भाँति इसे समझना होगा। श्री वृन्दावनदास ठाकुर ने कहा है—

शोच्य–देशे शोच्य–कुले आपन समान।
जन्माइया वैष्णव सबारे करेन त्राण॥
जेइ देशे, जेइ कुले वैष्णव अवतरे।
ताँहार प्रभावे लक्ष योजन निस्तरे॥
जत देख वैष्णवेर व्यवहार–दुःख।
निश्चय जानिह सेई परानन्द–सुख॥
विषयमदान्ध सब किछुइ ना जाने।
विद्या–धन–कुल मदे वैष्णव ना चिने॥

अर्थात् शोचनीय (हीन) देश में, शोचनीय कुल में अपने समान वैष्णव को पैदा कराकर भगवान सभी का उद्धार करते हैं। जिस देश या जिस कुल में वैष्णव आविर्भूत होते हैं, उनके प्रभाव से एक लाख योजन के अन्दर सभी का उद्धार हो जाता है। बाहर से उनके व्यावहारिक दुःख दिखाई देने पर भी वे सदैव परमानन्द में मग्न रहते हैं। परन्तु सांसारिक विषय मद में अन्धे हुए व्यक्ति यह नहीं समझ सकते। वे अपने विद्या, धन और कुल के मद से वैष्णव को नहीं पहचान सकते।

यदि भगवद् भक्त नीच कुल में आविर्भूत हुए हैं, तो ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि भक्त ने पापयोनि प्राप्त की है अर्थात् ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि पूर्व जन्म के दुष्कर्म के फल से बाध्य होकर वे नीच शूद्र कुल में पैदा हुए हैं। परन्तु समझना होगा कि उन्होंने नीचकुल में जन्म लेकर उस कुल को पवित्र किया है। कोई सज्जन यदि कलियुग की एक मात्र साधनपद्धति में सिद्धि प्राप्त करते हैं, तो वे ही श्रेष्ठ हैं।

प्रश्न 312—जहाँ हरिकीर्तन होता है, क्या वह धाम है?

उत्तर—भगवद् भक्त जहाँ रहकर निरन्तर भगवान की

कथा का कीर्तन और चर्चा करते हैं, उन सभी स्थानों को मैं श्रीधाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं मान सकता। वे सभी स्थान नित्यधाम के चिद्विलास क्षेत्र हैं। श्रीविष्णु का अधिष्ठान क्षेत्र—प्रत्येक जीव का हृदय है, प्रत्येक परमाणु हैं। अर्थात् वे प्रत्येक जीव हृदय में एवं कण-कण में विद्यमान हैं। अतः सर्वत्र ही श्रीधाम है। जिस दिन श्रीगुरुदेव की कृपा हृदय में प्रकाशित होती है, उसी दिन इस प्रकार का दर्शन होता है।

प्रश्न 313—क्या श्रीचैतन्यदेव साक्षात् भगवान हैं?

उत्तर—निश्चय ही। श्रीचैतन्यचन्द्र साक्षात् परमेश्वर हैं। श्रीगौरांग महाप्रभु परम परिपूर्ण चेतनवस्तु विभुचैतन्य वस्तु हैं। वे स्वयं भगवान हैं। वे ईश्वरों के भी ईश्वर परमेश्वर हैं। इसलिए नित्यसिद्ध भगवत् पार्षद श्रील नरोत्तम ठाकुर ने गाया हैं—

ब्रजेन्द्रनन्दन जेइ शचीसुत हैल सेइ,
बलराम हइल निताई।

अर्थात् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही शचीसुत हुए और बलराम निताई हुए। शास्त्र और भी कहते हैं—

स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व।
पूर्णज्ञान, पूर्णानन्द परम-महत्त्व॥
नन्दसुत बलि' जाँरे भागवते गाय।
सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोसांई॥
स्वयं भगवान् कृष्ण, कृष्ण सर्वाश्रय।
परम ईश्वर कृष्ण सर्वशास्त्र कय॥
सेइ कृष्ण अवतारी ब्रजेन्द्रकुमार।
आपने चैतन्यरूपे कैल अवतार॥

(चैतन्य चरितामृत)

अर्थात् कृष्ण स्वयं भगवान् हैं, परतत्त्व हैं, पूर्णज्ञान, पूर्णानन्द, परम महत्त्व हैं। श्रीमद्भागवत में जिनको नन्दनन्दन कहा गया है, वही कृष्ण श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। स्वयं भगवान् कृष्ण सबके आश्रय हैं, परमेश्वर हैं—ऐसा सभी शास्त्रों में कहा गया है। वे ब्रजेन्द्रकुमार कृष्ण अवतारी हैं, वे स्वयं चैतन्य महाप्रभु के

रूप में अवतरित हुए। हम भगवान के सेवक हैं, भगवान की सेवा ही हमारा नित्य कर्तव्य है। कलिकाल में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ही श्रीगौरांग के रूप में अवतीर्ण हुए। इसलिए भगवान श्रीगौरांगदेव ही कलियुगवासी हम सभी के नित्य उपास्य हैं, नित्य आराध्य वस्तु हैं। **जो साक्षात् भगवान श्रीचैतन्यचन्द्र का भजन नहीं करते, वे निश्चय ही अचेतन है।** परमदयालु श्रीचैतन्यचन्द्र की उपासना जिन्होंने नहीं की, उनके लिए चैतन्य की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

श्रीचैतन्यचन्द्र सोलह कलाओं से युक्त परिपूर्ण वस्तु हैं। अतः उनकी चेतनमयी कथा जीव के हृदय में प्रविष्ट होने पर जीव को सोलह आना उनके चरण कमलों में आकर्षित करेगी ही करेगी। जिन्होंने आंशिक रूप से उनकी कथा का श्रवण किया है, उन्होंने श्रीचैतन्यदेव के चरणकमलों में अपने को आंशिक रूप से प्रदान किया है, जितने दिनों तक जीव देह, मन, पुत्र, पत्नी, काय-मनोवाक्य सर्वस्व के द्वारा श्रीचैतन्यचन्द्र की सेवा में निरन्तर उन्मत्त नहीं होते, तब तक उनके द्वारा श्रीचैतन्यदेव की कथा का सोलह आना श्रवण नहीं हुआ, ऐसा समझना होगा।

श्रीगौरसुन्दर त्रिकालसत्य वस्तु हैं। श्रीगौरांगदेव श्री श्रीराधागोविन्द के मिलिततनु हैं। साक्षात् श्रीकृष्ण होकर भी राधाभाव में विभावित होकर उन्होंने जगत के मंगल के लिए कृष्णसेवक की लीला की है। इसलिए अज्ञता के कारण कोई-कोई उनको केवल महापुरुष या प्रचारक मानते हैं, किन्तु वे वैसा नहीं हैं। वे साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन ही शचीनन्दन हुए। श्रीगौरांगदेव श्रीजगन्नाथ मिश्र के नन्दन अर्थात् आनन्दवर्धक हैं। श्रीजगन्नाथ मिश्र पिता के रूप में उनके सेवक हैं।

श्रीगौरांगदेव सच्चिदानन्द विग्रह, असमोर्ध्व वस्तु अवतारी हैं। अन्य अवतारगण उनसे ही प्रकटित हैं। वे परतत्त्व की पराकाष्ठा, स्वयं भगवान, स्वयंरूप भगवान, मूल भगवान या अंशी भगवान हैं। कोई उनके समान या उनसे बड़ा नहीं है। श्रीगौरसुन्दर श्रीब्रजेन्द्रनन्दन होने पर भी विप्रलम्भ के अवतार हैं श्रीकृष्ण सम्भोगमय विग्रह हैं और श्रीगौरांगदेव विप्रलम्भमय विग्रह हैं। श्रीकृष्ण माधुर्यविग्रह हैं

और श्रीगौरांगसुन्दर औदार्य-विग्रह हैं।

प्रश्न 314—श्रीगौरांगदेव ने कौन सी दया की है?

उत्तर—श्रीगौरसुन्दर ने कहा है—श्रीकृष्णसंकीर्तन ही मानव जाति का एकमात्र कर्तव्य है। यही उनकी महावदान्यता (महादयालुता) है। श्रेष्ठ देवताओं के लिए यहाँ तक कि भक्तश्रेष्ठ उद्धव आदि के लिए भी दुष्प्राप्य एवं नारद आदि के लिए अगम्य वस्तु को जीव इसी श्रीकृष्ण-संकीर्तन के द्वारा ही प्राप्त कर सकता है।

श्रीगौरांगदेव लोक प्रतारक (लोगों की वञ्चना करनेवाले) समन्वयवादी नहीं हैं। जीव का सबसे अधिक मंगल जिससे होता है, उन्होंने वही बात कही है। जगत के लोग जिन सभी बातों को श्रेष्ठ समझते हैं, श्रीचैतन्यदेव की बात सुनने पर वे सभी बातें अपूर्ण और दुर्बल लगेंगी। मनोधर्मी सम्प्रदाय के लोगों ने जगत की छोटी-छोटी साधन प्रणालियों को बड़े रूप में प्रस्तुत कर वञ्चना प्रणाली का ही आश्रय किया है, वैसी वञ्चना करने के लिए गौरसुन्दर नहीं आये थे। जगत में तथाकथित सम्प्रदायों में जो साधन कल्पित है और होगा, वह अत्यन्त दुर्बल और कैतवमय (वञ्चनाओं से पूर्ण) है—श्रीगौरसुन्दर ने इसे श्रीमद्भागवत द्वारा जगत में प्रकाशित किया है एवं और भी दिखाया है कि श्रीकृष्णनाम संकीर्तन ही समग्र जगत के मंगल का एकमात्र उपाय है। किन्तु कृष्ण का संकीर्तन होना चाहिए। अपनी सुखसुविधा या दूसरों की सुखसुविधा के लिए जो कीर्तन होता है, वह कृष्णकीर्तन नहीं है।

वह श्रीकृष्णनाम साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्णाक्षर साक्षात् कृष्णवस्तु है। कृष्णकीर्तन करने पर निर्विशेषवादी की दुर्बुद्धि, नास्तिक की नास्तिकता दूर होने पर उसे यथार्थ मुक्ति प्राप्त हो सकती है। मायावादी प्रकाशानन्द इसके साक्षी हैं। विषयों में अत्यन्त आसक्त व्यक्ति की भी कृष्णकीर्तन द्वारा यथार्थ मुक्ति और मंगल हो सकता है। उत्कल सम्राट प्रतापरुद्र आदि इसके प्रमाण हैं। **कृष्णकीर्तन द्वारा पेड़ों की मुक्ति, पत्थरों की मुक्ति, पशु, पक्षी, व्याघ्र की मुक्ति एवं स्त्री, पुरुष आदि समस्त जीवों की मुक्ति हो सकती है।**

झारखण्ड वन मार्ग के वृक्षलता, पशु-पक्षी इसके उदाहरण हैं। केवल (शुद्ध) कृष्णकीर्तन नहीं हो रहा है, इसीलिए जीव की यथार्थ मुक्ति नहीं हो रही है। श्रीगौरसुन्दर पशु, पक्षी मानव, पेड़-पौधे आदि सभी के मंगल के लिए इस जगत में आये थे।

एकमात्र कृष्णकीर्तन से ही हमें समस्त सुविधा सुलभ होगी। कृष्णकीर्तन से ही एकमात्र चरम श्रेयः (कृष्णप्रेम) प्राप्त होता है। लिखाई पढ़ाई और पाण्डित्य का अन्तिम फल है—श्रीहरिनाम संकीर्तन।

भगवान के सुख के लिए जो कीर्तन होता है, वही यथार्थ में कृष्णकीर्तन है। जब कि अपनी या दूसरों की सुख-सुविधा के लिए जो कीर्तन का अभिनय किया जाता है, वह कृष्णकीर्तन नहीं माया का कीर्तन है। कार्य के द्वारा जिस प्रकार कारण जाना जाता है, उसी प्रकार कोई हरिनाम कर रहे हैं या नहीं, उसका फल देखकर समझा जाता है। **हरिनाम करते-करते यदि किसी की संसारिक प्रवृत्ति या संसार के प्रति आसक्ति बढ़ती है, तो उनका कीर्तित विषय हरिनाम नहीं है, अवश्य ही ऐसा समझना होगा।** श्रीनामकीर्तन द्वारा संसार के प्रति आसक्ति कटेगी, संसार के असारत्व या तुच्छत्व का अनुभव होगा, संसार अच्छा नहीं लगेगा, चित्त निर्मल और स्थिर होगा, अशान्ति या दुःख दूर होगा, प्रेम प्राप्त होगा और चिरशान्ति प्राप्त होगी। परन्तु यदि ऐसा नहीं होता है, तो मैं क्या कर रहा हूँ, वह विचारणीय है। श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा गया है—

श्रीकृष्णचैतन्य दया करह विचार।
विचार करिले चित्ते पाबे चमत्कार॥
एक कृष्णनामे करे सर्वपाप नाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश॥
अनायासे भवक्षय, कृष्णेर सेवन।
एक कृष्णनामेर फले पाइ एत धन॥
हर्षे प्रभु कहेन शुन स्वरूप रामराय।
नाम-संकीर्तन कलौ परम उपाय॥
संकीर्तनयज्ञे कलौ कृष्ण आराधन।
सेइ त' सुमेधा, पाय कृष्णेर चरण॥

नाम-संकीर्तने हय सर्वानर्थ नाश।
सर्वशुभोदय, कृष्ण प्रेमेर उल्लास॥
संकीर्तन हैते पाप संसार नाशन।
चित्तशुद्धि, सर्वभक्तिसाधन उद्गम॥
कृष्णप्रेमोद्गम, प्रेमामृत-आस्वादन।
कृष्णप्राप्ति, सेवामृत-समुद्रे मज्जन॥

अर्थात् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की दया का यदि आप विचार करेंगे, तो चमत्कृत होंगे। एक ही कृष्णनाम समस्त पापों का नाश करते हैं और प्रेम का कारण भक्ति को प्रकाशित करते हैं। उससे सहज ही संसार बन्धन नष्ट हो जाता है तथा कृष्ण की सेवा भी प्राप्त हो जाती है। एक कृष्णनाम के फल से इतने धन मिलते हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने हर्षपूर्वक कहा—हे स्वरूप और रामराय! नामसंकीर्तन कलियुग का परम उपाय है। कलियुग में आराधना संकीर्तनयज्ञ के द्वारा होती है—जो इस बात को जानता है और इसके कृष्ण अनुरूप आचरण करता है, वही सुमेधा (उत्तम बुद्धि वाला) हैं, वही कृष्ण के चरणों को प्राप्त कर सकता है। नामसंकीर्तन के द्वारा समस्त अनर्थों का नाश होता है, समस्त प्रकार के शुभ प्राप्त हो जाते हैं, कृष्णप्रेम का उल्लास प्राप्त होता है, पाप व संसारबन्धन का नाश होता है, चित्तशुद्धि होती है, समस्त भक्ति अंगों का पालन हो जाता है, कृष्णप्रेम प्राप्त होता है, प्रेमामृत का आस्वादन होता है, कृष्ण प्राप्त हो जाते हैं तथा सेवामृत समुद्र में भक्त डूब जाता है।

प्रश्न 315—कृष्णनाम और गौरनाम में क्या वैशिष्ट्य है?

उत्तर—अनर्थयुक्त अवस्था में अप्राकृत कृष्णनाम नहीं होता। कृष्णनाम में अपराध का विचार हैं, किन्तु गौर-नित्यानन्दनाम में अपराध का विचार नहीं हैं। अनर्थयुक्त अवस्था में जीव यदि निष्कपट होकर भगवद् बुद्धि से गौर-नित्यानन्दनाम का नाम ग्रहण करता है तो उनकी कृपा से उसके अनर्थ दूर हो जाते हैं। शास्त्र में कहा गया है—

कृष्णनाम करे अपराधेर विचार।

कृष्ण बलिले अपराधीर ना हय विकार॥
चैतन्य नित्यानन्दे नाहि ए सब विचार।
नाम लैते प्रेम देन, बहे अश्रुधार॥
स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु अत्यन्त उदार।
ताँरे ना भजिले कभु ना हय निस्तार॥

(चैतन्य चरितामृत)

अर्थात् कृष्णनाम अपराध का विचार करते हैं, 'कृष्ण' उच्चारण करने पर भी अपराधी व्यक्ति का विकार नहीं होता है। परन्तु चैतन्य-नित्यानन्द में ये सब विचार नहीं हैं। वे नाम लेते ही प्रेम प्रदान करते हैं और व्यक्ति की आँखों से आँसू की धारा बहने लगती है। श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वतन्त्र ईश्वर हैं और अत्यन्त उदार भी हैं। उनका भजन नहीं करने पर उद्धार कभी भी नहीं हो सकता।

प्रश्न 316—वैष्णव का कैसा विचार होता है?

उत्तर—वैष्णव या विष्णुभक्त गुरु को या शिष्य को अपनी इन्द्रियों का भोग्य नहीं समझते। वे सदैव गुरु के अनुगत होकर कृष्णसेवा में लगे रहते हैं, अतः अन्य वस्तुओं को अपने प्रभु की सेवा में नियुक्त देखकर वे सुख अनुभव करते हैं। गुरुनिष्ठ शिष्य की एकमात्र गुरुसेवा के अतिरिक्त किसी प्रकार की आत्मेन्द्रिय तृप्तिवाञ्छा नहीं रहती। जहाँ इसके विपरीत आचरण देखने को मिलता हैं, वहाँ पर यथार्थ गुरुभक्ति नहीं हैं ऐसा समझना होगा। जगद्गुरु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरुसेवा के आदर्श के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत के 4/28/34 श्लोक की टीका में कहा है—**गुरोः सेवायां प्रवृत्तः शिष्यः श्रवणकीर्तनादीन्यपि भोगान् तदुत्थान् प्रेमानन्दानपि गृहान तदुचित-विविक्तस्थलमपि नैवापेक्षत। श्रीगुरुसेवयैव सुखेन सर्वसाध्यसिद्धयर्थमित्युपदेशो व्यञ्जितः।**

गुरुसेवा में लगे हुए शिष्य गुरुसेवा के लिए अपने व्यक्तिगत श्रवणकीर्तनादि रूप आत्मप्रसाद या उसी से प्राप्त प्रेमानन्द अर्थात् निर्जन भजनानन्द, यहाँ तक कि उसके लिए आवश्यक निर्जनवास आदि की भी कभी अपेक्षा नहीं करते हैं। क्योंकि गुरुसेवा के द्वारा ही अनायास समस्त अर्थों की

सिद्धि हो जाती है।

प्रश्न 317—अनर्थ क्या है?

उत्तर—जो अर्थ (परमार्थ) नहीं है, वही अनर्थ है। अन्य अभिलाष, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की इच्छा, कनक कामिनी प्रतिष्ठा की इच्छा, अपने सुख की वासना आदि सभी अनर्थ हैं। हरिनाम कीर्तित होने पर अनर्थ दूर हो जाते हैं। यहाँ अनर्थ जीव की इन्द्रिय तर्पण इच्छा को सूचित करता है। अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने की इच्छा ही भगवत् सेवा में प्रधान बाधा है। अतः उस समय (अनर्थग्रस्त के समय) निरन्तर स्मरण कार्य बाधा प्राप्त होकर कृष्ण को छोड़कर अन्य भोग्य मायिक वस्तुओं के पीछे दौड़ने की प्रवृत्ति आ जाती है।

प्रश्न 318—भक्त जगत को किस प्रकार देखते हैं?

उत्तर—महाभागवत समग्र जगत को भगवान का प्रसाद या कृपारूप में दर्शन करते हैं। कृपा तो सेव्य वस्तु है। कृपा के ऊपर प्रभुत्व या कर्तृत्व विस्तार करना ठीक नहीं है। भगवद् भोग्य या भगवत् कृपामूर्ति जगत के प्रति भोगबुद्धि करने पर दण्ड या दुःख निश्चय ही मिलेगा।

प्रश्न 319—भगवत् कृपाप्राप्ति का क्या उपाय है?

उत्तर—जो सचमुच हरिसेवक हैं, जो निरन्तर हरिसेवा में लगे हुए हैं, उन लोगों का अतिक्रम न कर उनके अनुगत होने से ही हम भगवान का प्रसाद प्राप्त कर सकते हैं। **हरिभक्त के प्रसाद से ही हरि का प्रसाद मिलता है। हरिभक्त के अप्रसाद से जीव का किसी भी प्रकार मंगल नहीं हो सकता।**

प्रश्न 320—किसकी वस्तु भगवान स्वीकार करते हैं?

उत्तर—जो भगवान को बुलाकर खिला सकते हैं, उनकी वस्तु ही भगवान खाते हैं। परन्तु उन्हें सभी बुला नहीं सकते। तब खिलायेंगे किस प्रकार?

किसी अभक्त पण्डित के द्वारा भगवान को भोग

देने पर भी भगवान उनका मन्त्रपूत प्रदत्त नैवेद्य ग्रहण नहीं करते हैं। उनके दिये हुए अरवा चावल के घी युक्त अन्न, विभिन्न प्रकार के व्यञ्जन आदि भगवान की प्रीति को आकर्षित नहीं कर सकते। परन्तु भगवत् सेवा के उत्सुक भिक्षुक द्वारा कैसा भी अन्न किसी भी प्रकार से देने पर श्रीभगवान वह प्रीतिपूर्वक ग्रहण करते हैं।

प्रश्न 321—वैकुण्ठ वस्तु में हमारा विश्वास क्यों नहीं होता?

उत्तर—महापापी व्यक्ति का वैकुण्ठ वस्तु में विश्वास नहीं होता। पापमलिन चित्त निर्मल वस्तु में विश्वास स्थापन नहीं कर सकता। इसीलिए महाभारत और स्कन्दपुराण मे कहा गया है—

महाप्रसादे गोविन्दे नाम ब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥

अन्नब्रह्म महाप्रसाद, शिलाब्रह्म या काष्ठब्रह्म भगवान के विग्रह, शब्दब्रह्म और नरब्रह्म वैष्णव-गुरु—इन चार ब्रह्मवस्तुओं में स्वल्पपुण्यवान् अर्थात् महापापी व्यक्ति का विश्वास नहीं होता।

वर्तमान समय में हमने इन चार प्रकार की वैकुण्ठ वस्तुओं में विश्वास खो दिया है, अतः अनर्थ ने हमको ग्रास कर लिया है। महाप्रसाद, गोविन्द, नाम और गुरु—ये चार ही विष्णुवस्तु हैं। परन्तु माया जगत में आकर हमने इस विश्वास को खो दिया है। मीयते अनया इति माया—जिसके द्वारा नाप लिया जाय, वही माया है। परन्तु ये चार वस्तुएँ नाप लेने की वस्तु नहीं हैं।

श्रीगोविन्द स्वतः प्रकाश असल वस्तु हैं, उनको देखने के लिए अन्य रोशनी की आवश्यकता नहीं होती। **गां विन्दति इति गोविन्दः।** अधोक्षज गोविन्द is not a concoction of human mind. श्रीगोविन्द किसी के मन द्वारा कल्पित या मनगढन्त वस्तु नहीं हैं। श्रीगोविन्द ही एकमात्र अधोक्षज वस्तु हैं—परात्पर वस्तु हैं। परम हितकारी दिव्यज्ञानदाता वैष्णवराज श्रीगुरुदेव ही हमें यथार्थ-सत्य गोविन्द की बात बता देते हैं।

श्रीगोविन्द स्वयं अविमिश्रित परमानन्द विग्रह हैं। अपने अक्षज ज्ञान में हमें कुछ समय के लिए जो सत्य प्रतीत होता है, वह Apparent truth—Local truth है—वह positive या Absolute truth नहीं हो सकता। अनादि काल के विचार में गोविन्दसेवा विमुख लोगों के लिए जड़जगत की सृष्टि हुई है।

प्रश्न 322—सेवा किसे कहते हैं?

उत्तर—जिसमें ठाकुर का आनन्द होता है, भगवान श्रीहरि को सुख होता है, उसी को नाम सेवा है। जिसमें अपनी सुख-सुविधा होती है, उसका नाम भोग है।

कपटी लोग पुत्र-पौत्र आदि की प्राप्ति के लिए सोलह उपचारों से श्रीविग्रह की पूजा कर सकते हैं, किन्तु उनका उद्देश्य होता है—ठाकुर सेवा के बदले में ठाकुर से कुछ प्राप्त करना। इसे सेवा नहीं कहा जा सकता। ठाकुर पूजा और नाम आराधना के बहाने जगत में क्या कपटता नहीं चल रही है? भगवान की सेवा और भगवत् सेवा का अभिनय—दोनों पृथक् वस्तु हैं। भगवान की श्रीअर्चामूर्ति की सेवा जिससे भलीभाँति सम्पादित हो, उसके लिए हमें विशेष चेष्टा करनी चाहिए। हर कोई भगवद् विग्रह का सेवक नहीं हो सकता। बीस रुपये देकर नाम नहीं होता, पचास रुपये जमा करने से हरिकथा की वक्तृता नहीं होती, पाठ नहीं होता—उनमें भाषाविन्यास या लोकरञ्जक आमोद-प्रमोद हो सकता है, वह भक्ति या वैष्णवधर्म नहीं है, उसका नाम भोग या कर्मकाण्ड है। दस रुपये का देवल-ब्राह्मण (जो देवताओं की पूजा करके जीविका-निर्वाह करे) ठाकुर सेवा नहीं कर सकता है।

विष्णु और वैष्णवों की सेवा ही सर्वोत्कृष्ट है—इस प्रकार का दृढ़ विश्वास जब तक नहीं होगा, तबतक हमारा कोई मंगल नहीं हो सकता।

प्रश्न 323—प्रीति का क्या धर्म है?

उत्तर—प्रीति का धर्म और अप्रीति का धर्म एक नहीं है। आत्मधर्म ही प्रेमधर्म या प्रीति का धर्म है, और मनोधर्म

ही अप्रीति का धर्म है। प्रेमधर्म में—भक्तिधर्म में—परमधर्म में—भागवत धर्म में–भगवत् सेवाधर्म में संघर्ष नहीं है, उसमें Harmony (ऐक्यतान) विराजित है। प्रेमधर्म के याजन से विच्युत होने पर ही हम एक दूसरे के प्रति भोगबुद्धि करते हैं। मानवजाति में सभी कृष्ण के सेवक हैं—यह समझने पर मनुष्य की किसी प्रकार की असुविधा नहीं रहती। तब जीव अपने को वैष्णव के रूप में अनुभव कर सकता है और तभी वैष्णव के साथ वैष्णव की स्वाभाविक प्रीति उदित होती है। जगत में प्रीतिधर्म नहीं है, सर्वत्र ही विरोधमय संघर्ष धर्म है।

प्रश्न 324—जीव का चरम लक्ष्य क्या है?

उत्तर—भुक्ति और मुक्ति जीव का चरम लक्ष्य नहीं हो सकता। जीव तो भगवत् सेवक है। अतः भक्ति ही उसका चरम लक्ष्य है। मुक्ति भुक्ति दोनों ही पिशाची सदृश हैं। दोनों ही जीव को आस्तिकता से विच्युत कर देती हैं। मुक्ति भुक्ति का ही अन्य पक्ष है। इसलिए भगवद् विश्वासी सज्जनगण या आस्तिकगण कभी भी भुक्ति–मुक्ति पिशाची की शरण स्वीकार नहीं करते। भगवद् भक्तगण मुक्त हैं, अतः मुक्त–पुरुष मुक्ति के लिए लालायित नहीं हैं। भोग और त्याग अर्थात् भुक्ति और मुक्ति दोनों का ही वर्जन कर भक्ति ही ग्रहणीय है।

प्रश्न 325—मानव द्वारा कल्पित धर्म तो आत्मधर्म नहीं लगता। इस विषय में आपका क्या मत है?

उत्तर—श्रीमद्भागवत में कथित सनातन धर्म अथवा श्रीचैतन्यदेव द्वारा कथित भागवतधर्म के अतिरिक्त अन्यान्य समस्त प्रकार के मनुष्यज्ञान–प्रसूत (उत्पन्न) धर्मों में काल्पनिक चित्र और कैतव (वञ्चना) है। भागवत धर्म अथवा श्रीचैतन्यदेव का प्रचारित विमल आत्मधर्म ही एकमात्र प्रोज्झित–कैतव–धर्म (वञ्चना–रहित धर्म) है, वह निर्मत्सर साधुओं का अनुमोदित और आचरित सनातन श्रौतधर्म है। आजकल जिन सभी धर्मों की बात प्रचलित हैं, मानवकल्पित या मानव–मनःसृष्ट मनोधर्म मात्र हैं, उनमें से कोई एक भी

आत्मधर्म नहीं है। शास्त्र कहते हैं—

चैतन्यगोसांई जेइ कहे, सेइ मत सार।
आर जत मत, सेइ सब छारखार॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

अर्थात् श्रीचैतन्यदेव जो कहते हैं, वही सार मत है। इसके अतिरिक्त जितने मत हैं, वे सब नष्टभ्रष्ट हैं। आत्मधर्म नित्यवस्तु है। आत्मा नित्य है, उसका धर्म भी नित्य है। धर्म तो भगवत् प्रणीत है। द्वादश महाजनों को छोड़कर अन्य कोई भी उस धर्म की बात नहीं जानते। अतः उन द्वादश महाजनों के अनुगत व्यक्तिगण ही जानते हैं और जानेंगे। इसीलिए धर्म मनुष्य द्वारा सृष्ट है, यह कैसे सम्भव है?

प्रश्न 326—क्या कनिष्ठ अधिकारी भक्त कर्मी और ज्ञानी से श्रेष्ठ है?

उत्तर—निश्चय ही! भक्त जितने भी कनिष्ठ हों, उन्होंने तो भक्तिपथ अर्थात् मंगल का पथ स्वीकार किया है। कर्मी या ज्ञानी का तो ऐसा सौभाग्य नहीं है।

श्रीमूर्तिसेवा, गुरुवैष्णवसेवा और श्रीनामसेवा द्वारा जीव का परम मंगल होता है। श्रीचैतन्यदेव ने कहा है—जिसकी सेवोन्मुख जिह्वा पर एकबार भी कृष्णनाम कीर्तित होता है, वही सर्वश्रेष्ठ हैं।

देवीधाम के सर्वश्रेष्ठ पुण्यकर्मी और ज्ञानी से भी श्रीविष्णु के नामात्मक मन्त्र द्वारा अर्चनकारी कनिष्ठ-अधिकारी भक्त श्रेष्ठ है; क्योंकि कर्मी और ज्ञानी जितने भी बड़े क्यों न हों, असल वस्तु विष्णु के नित्य-सेव्यत्व में उनका विश्वास नहीं होता; अतः मुख में वेद मानने पर भी वे वास्तव में नास्तिक ही होते हैं, जब कि विष्णु के अर्चक (कनिष्ठ वैष्णव) की महिमा भजनराज्य में कितनी भी कम क्यों न हो, परन्तु गुरुमुख से भगवान विष्णु के विग्रह की सत्यता एवं नित्यता के विषय में सुनकर वे उनके प्रति श्रद्धायुक्त होते हैं। श्रीविग्रह अर्चनकारी एक कनिष्ठ-अधिकारी वैष्णव श्रीविग्रह के पास यदि मात्र एकबार भी घण्टा बजाते हैं, तो उस घण्टा के एकबार वादन के सामने हजार हजार

कर्मी लोगों द्वारा अस्पताल, दरिद्रसेवा, सेवाश्रम, विद्यालय स्थापन तथा निर्भेद-ज्ञानी का ध्यान और कष्टमय साधन तुच्छ हैं। यह साम्प्रदायिकता नहीं है, यह वास्तव सत्य बात है। नास्तिक व्यक्ति इसका मर्मार्थ किसी भी प्रकार से नहीं समझ सकते। इसीलिए वे लोग कभी प्रकाश्य रूप से भक्तिनिन्दक तो कभी प्रच्छन्न-निन्दक या समन्वयवादी हो जाते हैं।

प्रश्न 327—कौन हरिकीर्तन कर सकते हैं?

उत्तर—जो तृणादपि सुनीच, वृक्ष की भाँति सहिष्णु अमानी और मानद—इन चार गुणों से युक्त हैं, वे ही हरिकीर्तन कर सकते हैं। सर्वोत्तम होकर भी भक्त अपने को तृण से भी अधम समझते हैं। निष्कपट न होने पर तृणादपि सुनीच नहीं हुआ जाता है। निष्काम ही निष्कपट है।

कृष्णनाम के उच्चारणकारी ही महाभाग्यवान् हैं। कृष्णनाम संकीर्तन ही परम साधन और साध्य है—यह बात महाजनगण और शास्त्रों ने कही है।

कीर्तनकारी व्यक्ति निरभिमानी या निरहंकारी अर्थात् अमानी होते हैं; वे किसी प्रकार का जड़ अभिमान नहीं रखते।

प्रश्न 328—अधोक्षज वस्तु को किस प्रकार जाना जा सकता है?

उत्तर—भगवान श्रीहरि ही अधोक्षज वस्तु है। वह अधोक्षज वस्तु एकमात्र श्रवण के द्वारा ही जानी जाती है। साधुगुरु के निकट सेवोन्मुख कानों के द्वारा श्रवण करने पर अधोक्षज वस्तु को जाना जायेगा। इस जगत में हमें जो कथाएँ सुनने को मिलती हैं, उन्हें सुनने के बाद कानों के अतिरिक्त दूसरी इन्द्रियों के द्वारा वे सत्य हैं या नहीं, हम लोग विचार करते रहते हैं। किन्तु हमारे श्रीगुरुदेव या शास्त्र हमें जो कथाएँ कहते हैं, श्रवण इन्द्रिय के अतिरिक्त दूसरी इन्द्रिय के द्वारा उनको समझने की क्षमता हमारी नहीं है। यह विषय अर्थात् अधोक्षज वस्तु इन्द्रियज ज्ञान से अतीत

होने के कारण उस प्रकार की चेष्टा करना विडम्बना मात्र है। तर्कपथ का अवलम्बन करके उस विषय में कोई खोज नहीं कर सकते हैं। तब इन्द्रिय ज्ञान से अतीत उन कथाओं को श्रीगुरुदेव के श्रीमुख से कान के द्वारा श्रवण करने का सौभाग्य मिलने पर, उन कथाओं को प्रणिपात, परिप्रश्न एवं सेवा के द्वारा जानना होगा।

प्रश्न 329—प्रणिपात एवं परिप्रश्न का अर्थ क्या है?

उत्तर—प्रणिपात का अर्थ है, प्रणत होकर या श्रवण के विषय में किसी भी प्रकार से अमनोयोगी न होकर अर्थात् सम्पूर्णरूप से कान देकर (ध्यानपूर्वक) श्रवण करना।

इस प्रणिपात के अतिरिक्त श्रवण सुष्ठु (सुचारु) रूप से नहीं होता है—प्रणिपात के अतिरिक्त अधोक्षज वस्तु को जानने का, साधु-गुरु और शास्त्र की कथाओं को समझने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। जो शब्द मेरे गुरुपादपद्म के निकट पहुँच सकता है, ऐसे शब्दों के द्वारा जो मेरे विज्ञाप्य (प्रार्थना) के विषय हैं, वही परिप्रश्न है। प्रश्न का उत्तर सुनने के लिए प्रस्तुत होकर जो प्रश्न किया जाता है, वही परिप्रश्न है। सन्देहवादी होकर जो प्रश्न की चेष्टा है, वह परिप्रश्न नहीं है। अहंकार के वशवर्ती होकर केवल जो प्रश्न का ढोंग है, वह भी परिप्रश्न नहीं है। प्रणिपात न होने पर परिप्रश्न नहीं होता है, फिर परिप्रश्न के द्वारा विषय की मीमांसा न होने पर सेवा ठीक नहीं होती है।

प्रश्न 330—साधु कौन है?

उत्तर—श्रुतियाँ कहती हैं, जो व्यक्ति अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है, वही सत् है। कृष्णदास्य ही जीव की सत्ता या स्वभाव है। उसी कृष्णदास्य में जो नियुक्त हैं, वे ही सत् या साधु हैं अर्थात् कृष्णभक्त ही साधु हैं; भक्ति ही साधुत्व है। भगवान में जिनकी भक्ति नहीं है, उनको साधु नहीं कहा जाता है। इसीलिए अभक्त ही असाधु हैं। शास्त्र कहते हैं—

असत्संगत्याग—एइ वैष्णव-आचार।
स्त्रीसंगी—एक असाधु, कृष्णाभक्त आर॥

अर्थात् असत्-संग परित्याग ही वैष्णवों का आचरण है। स्त्रीसंगी तथा श्रीकृष्ण चरण कमलों से विमुख व्यक्ति ही असाधु है।

कृष्णभक्त—निष्काम, अतएव शान्त।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धिकामी सकलि अशान्त॥

(चैतन्य चरितामृत)

अर्थात् कृष्णभक्त ही निष्काम होते हैं, इसलिए वे शान्त हैं और भुक्ति, मुक्ति तथा सिद्धिकामी सभी अशान्त हैं।

प्रश्न 331—क्या श्रीविग्रह साक्षात् भगवान हैं?

उत्तर—निश्चय ही। नास्तिक पाषण्डिजन कहते हैं कि श्रीमूर्तिपूजा की आवश्यकता नहीं है। श्रीमूर्तिपूजा उनके मत से श्रुतिपथ की विरोधी है। वे लोग कहते हैं,—वैष्णव की श्रीमूर्तिपूजा बौद्ध-पद्धति का अनुगमन मात्र है, श्रौतपद्धति नहीं। उनका भाग्य होने पर वे लोग एक दिन समझ पायेंगे कि—श्रीविग्रह अवतार—जीव को कृपा करने के लिए भगवान ही अर्चा अवतार के रूप में विश्व में प्रकटित हुए हैं।

परजगत की वस्तु जो इन्द्रियग्राह्य नहीं है, उनके Proxy या प्रतिभूसूत्र से लेप्या, लेख्या इत्यादि रूप में प्रतिमा आकर उपस्थित होती है।

नाम ही नामी हैं; नामी के रूप, गुण, लीला वैचित्र्य में भेद बुद्धि ही अद्वयज्ञान की विरुद्धबुद्धि है। इसलिए मेरे श्रीगुरुदेव कहते हैं, श्रीमूर्ति को अन्य जड़ वस्तु के समान, अपने भोग की वस्तु के समान ज्ञान नहीं करना चाहिए, उसमें अपराध होता है अर्थात् नरकगामी होना पड़ता है। सम्बन्धज्ञान के अभाव से ही अर्चा एवं अर्च्य में अर्थात् श्रीमूर्ति एवं भगवान में जीव की पृथक बुद्धि होती है। यह महा-दुर्भाग्य की बात है। स्वयं भगवान् श्रीगौरांगदेव ने कहा है—

ईश्वरेर विग्रह सच्चिदानन्दाकार।
से-विग्रह कह सत्त्वगुणेर विकार॥
श्रीविग्रह ये ना माने, से-इ त' पाषण्ड।

अस्पृश्य, अदृश्य से-इ हय यमदण्ड्य॥

अर्थात् भगवान का श्रीविग्रह सत्-चिद्-आनन्दमय है। ऐसे विग्रह को तुम सत्त्वगुण का विकार कह रहे हो! श्रीविग्रह को जो नहीं मानता है, वह पाषण्डी है, और अस्पृश्य तथा अदृश्य (जो अछूत तथा उसके मुख का दर्शन करना भी पाप हैं) वह यमदण्ड का भागीदार होता है।

पौत्तलिकगण अधःपतित हैं, उनकी अर्चाविग्रह में शिला-बुद्धि रहती है। शालग्राम को गण्डकी शिला एवं गुरुदेव को मनुष्य के साथ समान या मनुष्यजाति इत्यादि विचार—यह नारकियों का विचार है। वैष्णवगण पौत्तलिक नहीं हैं। वे लोग अर्चावस्तु में शिला-बुद्धि नहीं करते हैं—भूतशुद्धि न कर पूजा नहीं करते हैं—जो इन्द्रियों के द्वारा बाह्य रूप-रस आदि ग्रहण किया जाता है, उस प्रकार बहिर्मुख इन्द्रियों के द्वारा वे लोग (वैष्णव) पूजा नहीं करते हैं। वे लोग सेवोन्मुख इन्द्रियों के द्वारा चिद्-इन्द्रियों के द्वारा सच्चिदानन्द विग्रह भगवान की सेवा करके इष्टदेव का सुखविधान करते हैं।

श्रीचैतन्यचन्द्र ने श्रीजगन्नाथदेव को साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन के रूप में दर्शन करने की लीला प्रदर्शित की है। निम्बकाष्ठ या निम्बकाष्ठ के अन्दर भगवान हैं—पौत्तलिकों का इस प्रकार श्रीविग्रह में देह-देही भेद विचार उन्होंने (चैतन्य महाप्रभु) प्रदर्शित नहीं किया। उन्होंने कहा है, **'प्रतिमा नह तुमि साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।'**

प्रश्न 332—हमारी भजन में उन्नति क्यों नहीं हो रही है?

उत्तर—कैसे होगी? हम तो भक्ति से बाह्यवस्तुओं में व्यस्त हैं। इसीलिए बाह्यचिन्ताएँ अर्थात् जगत् की चिन्ता ही प्रबल हो रही है। भोग्यदर्शन या बहिर्दर्शन को त्यागकर अन्तर्दर्शन की ही आवश्यकता है। हृदय देवता (भगवान) की सेवा के लिए व्याकुल होना ही उचित है। परन्तु हम ऐसा नहीं कर रहे हैं, अतः भजन में उन्नति कैसे होगी? अपने सुख के लिए या सांसारिक उन्नति के लिए ही

व्यस्त रहते हुए भजन में उन्नति कैसे सम्भव है? स्वजन नामक डकैतों को ही सुखी करने के लिए व्यस्त एवं उत्साहित रहने पर नित्यबन्धु गुरु एवं कृष्ण की सेवा के लिए उत्साह एवं व्याकुलता कैसे रह सकती है? पश्चिम दिशा में चलने पर पूर्व दिशा में नहीं जाया जा सकता। मैं इतनी बातें कह रहा हूँ परन्तु लोगों की भ्रान्ति अर्थात् दूसरों के प्रति उनका अपनत्व ज्ञान किसी प्रकार भी छूट नहीं रहा है। वास्तव में ऐसे लोगों के भाग्य में दुःख ही लिखा हुआ है, इसलिए इस विषय में मैं क्या कर सकता हूँ।

प्रश्न 333—जीवों की प्रयोजनीय वस्तु क्या है?

उत्तर—जीव मात्र ही कृष्ण का सेवक है। अतः कृष्ण की सेवा एवं कृष्ण की प्रीति ही उसका प्रयोजन है, किन्तु जगत के लोग अपने इस स्वरूप को भूलकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग को ही अपना सर्वोत्तम प्रयोजन मान रहे हैं। परम पुरुषार्थ कृष्णप्रेम या कृष्णप्रीति उस चतुर्वर्ग को धिक्कार कर सकती है। भगवान श्रीगौरांगदेव इसी कृष्णप्रेम को प्रदान करने वाले हैं। वे स्वयं कृष्ण होने पर भी कृष्णप्रेम प्रदाता भी हैं। ऐसे भगवान् गौरांगदेव की अपेक्षा श्रेष्ठ उपदेष्टा या शिक्षक कोई नहीं हो सकता।

प्रश्न 334—क्या विषयी होना उचित है?

उत्तर—कभी भी नहीं। हम भगवान के सेवक हैं; अतः हम विषयी क्यों होंगे? विषय तो हमें कष्ट देता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द तरंगायित होकर हमें धक्का दे देते हैं। इसलिए विषयी होना उचित नहीं है। इसलिए भगवान श्रीगौरसुन्दर ने कहा है—जो भगवान का भजन करना चाहते हैं, उन्हें विषयी व्यक्ति का दर्शन भी नहीं करना चाहिए।

विषयी या इन्द्रियग्राह्य वस्तु उपस्थित होने पर भगवत् विस्मृति हो जाती है और भगवान के भक्तों के प्रति तुच्छ बुद्धि आ जाती है। जो भगवान की सेवा करने के लिए भक्तिपथ में अग्रसर हो रहे हैं, वे कदापि विषयी व्यक्ति

का दर्शन नहीं करेंगे। 'योषा' का अर्थ विषय है तथा योषाधिपतित्व के अभिमानी को ही विषयी कहते हैं। विषयी तो होना ही नहीं, यहाँ तक की विषयी तथा विषयी व्यक्ति के संगी का भी दर्शन नहीं करना चाहिए। श्रीगौरसुन्दर ने भवरोग के चिकित्सक के रूप में हमें कहा है—"विषयी व्यक्ति का संग मत करो, योषित् संग मत करो, मत करो।"

प्रश्न 335—क्या मैं शिष्य बना सकता हूँ?

उत्तर—हिंसा परित्याग कर जीवों के प्रति दया करो। अर्थात् बर्हिमुख जीवों को कृष्ण के उन्मुख करो। हिंसा करने के लिए गुरुगिरि मत करो, स्वयं विषयों में डूब जाने के लिए गुरुगिरि मत करो—गुरु के वेश में मत सजो। किन्तु यदि तुम गुरु एवं कृष्णके निष्कपट सेवक हो सकते हो, तो उनकी कृपाशक्ति प्राप्तकर सकते हो, तब भय की कोई बात नहीं है, अन्यथा सर्वनाश ही हो जायेगा।

प्रश्न 336—श्रीगुरुदेव के प्रति कैसा विचार करूँगा?

उत्तर—श्रीगुरुदेव की कृष्ण की भाँति भक्ति (सेवा) करो। साक्षात् भगवान के प्रति तुम्हारी जैसी बुद्धि होती है, गुरुदेव के प्रति भी ठीक वैसी ही बुद्धि होनी चाहिए, गुरु को किसी भी अंश में भगवान से कम नहीं मानना चाहिए। साधु का कर्तव्य है—'भगवान की भांति गुरु को जानना—पूजा करना—सेवा करना। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो शिष्य के स्थान से भ्रष्ट हो जाओगे।'

जिसकी गुरु और भगवान के प्रति अभिन्न बुद्धि है, केवल वही व्यक्ति शास्त्रों का मर्म समझ सकता है, हरिनाम कर सकता है, हरिकथा कह सकता है। श्रीकृष्ण स्वयं अपनी ही सेवा की शिक्षा देने के लिए गुरुरूप में अवतीर्ण होते हैं। यदि भाग्य अच्छा हो तभी शास्त्रों की यह अटल सत्य बात समझ में आ सकती है, अन्यथा संदिग्धचित्त होकर व्यक्ति संसार समुद्र में ही डूबकर मर जाता है।

श्रीगुरुदेव विषयविग्रह या मूल आश्रयविग्रह नहीं हैं। वे तो मूल आश्रयविग्रह की प्रकाशमूर्त्ति हैं। श्रीकृष्ण

विषयविग्रह हैं किन्तु गुरुदेव आश्रयविग्रह हैं। श्रीकृष्ण predominating Absolute अर्थात् भोक्ताभगवान तथा श्रीगुरुदेव predominated Absolute अर्थात् सेवक भगवान या आराधक–भगवान हैं। आश्रयविग्रह या सेवाविग्रह श्रीगुरूदेव कृष्ण होने पर भी कृष्ण के प्रियतम या कृष्णप्रेष्ठ हैं, यही गुरुतत्त्व की विशेषता है। श्रीकृष्ण पूर्णशक्तिमान हैं और श्रीगुरुदेव कृष्ण की पूर्णशक्ति हैं। श्रीगुरुदेव जीव नहीं हैं, जीवों के प्रभु हैं। श्रीगुरुदेव विभु चैतन्य–स्वांशशक्ति अर्थात् स्वरूपशक्ति हैं, किन्तु हम जीव अणुचैतन्य, तटस्थाशक्ति या विभिन्नांश हैं।

प्रश्न 337—गौड़ीय भक्त कौन हैं?

उत्तर—विष्णु के भक्तों को वैष्णव, कृष्णभक्तों को कार्ष्ण और राधाजी के भक्तों को गौड़ीय कहते हैं।

परकीय मधुररस आश्रित श्रीरूपानुग गौर भक्त ही गौड़ीय हैं। गौड़ीयभक्त ललिताजी के अवतार श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी के अनुगत हैं। इसीलिए गौड़ीयभक्तों को श्रीस्वरूप रूपानुग कहते हैं। इसीलिए श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप–दामोदरजी को कहा है—**तोमार गौड़ीया करे एतेक व्यवहार।**

गौड़ीय भक्तों की मञ्जरी System (प्रणाली) है। श्रीराधागोविन्दजी, श्रीराधामदनमोहनजी और श्रीराधागोपीनाथजी ही श्रीगौड़ीयभक्तों के उपास्य वस्तु हैं। जैसे कि शास्त्रों में कहा गया है—

श्रीराधा–सह श्रीमदनमोहन।
श्रीराधा–सह श्रीगोविन्द चरण॥
श्रीराधा–सह श्रीलगोपीनाथ।
एइ तीन ठाकुर हय गौड़ीयार नाथ॥
एइ तीन ठाकुर गौड़ीयाके करियाछेन आत्मसात्।
ए तीनेर चरण बन्दों, तीने मोर नाथ॥

(चैतन्य चरितामृत)

गौड़ीय वैष्णवों के सेव्य अष्टादशाक्षर मन्त्र में निर्दिष्ट कृष्ण ही मदनमोहन, गोविन्द ही गोविन्दजी एवं गोपीजनबल्लभ ही गोपीनाथजी हैं। मदनमोहन कृष्ण का

अनुभव ही सम्बन्ध हैं, गोविन्दजी की सेवा ही अभिधेय एवं गोपीजनबल्लभ के द्वारा आकृष्टि ही प्रयोजन है।

मदनमोहन श्रीकृष्ण ही सम्बन्धतत्त्व के अधिदेवता हैं। गोविन्दजी ही अभिधेयतत्त्व के अधिदेवता हैं और गोपीनाथजी प्रयोजन तत्त्व के अधिदेवता हैं।

साधारण रूप में गौर पदाश्रयभक्तों को ही गौड़ीय कहा जाता है। गौड़देश के भक्तों को गौड़ीय कहते हैं। जिस प्रकार उत्कलदेशीय भक्तों को उड़ियाभक्त कहा जाता है, उसी प्रकार बंगदेशीय भक्तों को भी गौड़ीयभक्तों के रूप में जाना जाता है।

प्रश्न 338—क्या त्यागी भी बद्ध हैं?

उत्तर—भोगी एवं त्यागी दोनों ही बद्ध हैं। एकमात्र भक्त ही नित्य कृष्णसेवामग्न हैं। भक्त भोगी भी नहीं हैं, त्यागी भी नहीं हैं। भक्त की स्वसुख वाञ्छा नहीं है, वे सदैव भगवत्–सुखानुसन्धान में व्यस्त हैं। किन्तु भोगी एवं त्यागी दोनों ही स्वसुखकामी हैं, इसीलिए वे लोग दुःख पाते हैं। भक्त की कामना नहीं होती है, वे निष्काम हैं; इसीलिए भक्त ही वास्तव में सुखी हैं।

भगवत्–सेवाही जीव का धर्म है। इसी भगवत्सेवा में शिथिलता आनेपर ही जीव हरिसेवा के अतिरिक्त भोग्य इतरवस्तु अर्थात् जगत या विश्व के प्रभु होने की इच्छा से युक्त हो जाता है। अतएव सावधान रहने पर इस जगत में तथा पर–जगत में कृष्ण सेवोन्मुखता में बाधा नहीं आती है।

प्रश्न 339—क्या जीव के अन्दर स्वतन्त्र इच्छा है?

उत्तर—जीव अणुचित् है; इसलिए बृहत् शक्ति माया उसको आवरण कर सकती है। इसके द्वारा जीव की सेवा–विमुखता या सेवा–शिथिलता हो जाती है। जीव स्वतन्त्र–इच्छाविशिष्ट अणुचित् है। स्वतन्त्र इच्छा के कारण वह अभक्त या भक्त, इन दो अवस्था में अवस्थान करता है। अभक्त अवस्था ही उसकी बद्धावस्था या सेवा–विमुखता है। फलस्वरूप उसमें ब्रह्म होने की वासना और माया के प्रभु होने की दुर्दमनीय चेष्टा दिखाई देती है। शुद्धभक्तों की कृपा

से ही सेवा धर्म में जागरण या आत्मधर्म में उसे स्वास्थ्य की प्राप्ति होती हैं, तब उसे पुनः बद्ध नहीं होना पड़ता है। जीव की स्वतन्त्र इच्छा को नष्ट करने की चेष्टा करने पर वह प्राकृत (जड़) गुण में बदल जाता है। जड़ता एवं चेतनता एक नहीं है। जड भोग की इच्छा चेतनावरणी और विक्षेपिणी है। भक्त की कृपा होने पर स्वतन्त्र इच्छायुक्त बद्धावस्था सहज ही छूट जाती है। भक्त का आनुगत्य ही स्वतन्त्रता का सद्व्यवहार है और अपने भोगों की इच्छा ही स्वतन्त्रता का अपव्यवहार है।

प्रश्न 340—बहिरंगा शक्ति और चिद्शक्ति का कार्य क्या है?

उत्तर—नश्वर विश्व भगवान की बहिरंगा शक्ति से प्रकटित है; उसमें तीन गुण क्रियायुक्त हैं। जब कि नित्य जगत् चिद्शक्ति से प्रकटित हैं; वहाँ पर ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित्—ये तीन शक्ति सदैव कार्य करती हैं। चित्शक्ति द्वारा प्रकटित जगत अचित्-शक्ति द्वारा सृष्ट जगत से पृथक् धर्मयुक्त है। जीव का स्वरूप भेदाभेद प्रकाश एवं भगवान की तटस्था शक्ति से उत्पन्न है। भगवान की ये तीन शक्तियाँ ही नित्य हैं। जब तटस्था शक्ति से प्रकटित जीव अनित्य संसार का भोगी होता है, उसी समय ही उसका अमंगल होता है या दुःख होता है। जीव भगवद्-विमुख होने पर ही बहिरंगा-शक्ति माया के द्वारा आक्रान्त होता है। और भगवद्-उन्मुख होने पर चिद्-शक्ति उसको भगवत्सेवा में सहायता करती हैं।

प्रश्न 341—गुरुतत्त्व और राधातत्त्व में क्या वैशिष्ट्य है?

उत्तर—श्रीराधा ठाकुरानी मूल आश्रयविग्रह हैं। श्रीराधा मधुररसाचार्य शिरोमणि हैं। श्रीवार्षभानवी कृष्णकान्ता-मुकुटमणि हैं। मधुररसाचार्य मदीय श्रीगुरुदेव श्रीराधा की प्रियसखी अर्थात् नित्यसिद्ध ब्रजगोपी हैं। श्रील नरोत्तम महाशय की **'गुरुरूपा सखी बायें (बामे)'** [प्रार्थना, गीत 11, पद्य 3, पंक्ति 3] इत्यादि वाक्यों की चर्चा करने पर जाना जाता है कि गुरु

या सखी श्रीवार्षभानवी के ही कायव्यूह एवं उनसे अभिन्न हैं।

प्रश्न 342—क्या शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए भगवान के निकट प्रार्थना अभक्ति या भक्ति-बाधक है?

उत्तर—नहीं। श्रीकृष्ण हमें जब जिस अवस्था में रखते हैं, वही हमारे लिए शिरोधार्य है। केवल भजनार्थी होकर शारीरिक मंगल प्राप्त करने की इच्छा भी भक्ति के अनुकूल विषय है। किन्तु अनर्थयुक्तभाव प्राप्त करने के लिए निरामय होने की आकांक्षा से भगवान से अभक्त व्यक्ति जो सेवा लेने की चेष्टा करता है, वह स्वीकार योग्य नहीं है। परन्तु विघ्नविनाशन श्रीनृसिंहदेव के पादपद्म में कृष्णभजन के उद्देश्य से स्वस्थ होने की प्रार्थना निश्चय ही आदरणीय हैं।

प्रश्न 343—क्या अस्वस्थ अवस्था में भी भजन करना चाहिए?

उत्तर—शारीरिक अवस्था अच्छी न रहने पर भी कृष्णभजन में उदासीनता युक्तिसंगत नहीं है, इसलिए कृष्णभजन से विरत नहीं होऊँगा, यही सोच रहा हूँ। परन्तु सम्पूर्णरूप से असमर्थ होने पर भजन केवल स्मरण द्वारा ही होगा।

प्रश्न 344—क्या अभक्त को भक्त मानना उचित है?

उत्तर—नहीं। श्रीगुरुदेव नामाचार्य हैं अर्थात् नामकीर्तनकारी हैं। नामापराधी को गुरुज्ञान करना उचित नहीं है। सद्गुरु किसी का भी इन्द्रियतर्पण नहीं करते हैं अर्थात् किसी का मन रखनेवाली बात नहीं कहते हैं। प्रेयःपन्थी व्यक्ति श्रेयःपन्थी भक्तों की बात पसन्द नहीं करते हैं। वे लोग (प्रेयःपन्थी) अपनी इच्छानुसार कथा की खोज करते रहते हैं, इसीलिए वे लोग यथार्थ मंगल से वञ्चित होते हैं।

अभक्त को भक्त मानना, मिथ्या भक्ति को भक्ति

मानना आत्मवञ्चना अर्थात् स्वयं को ठगना मात्र है। भक्तों की सेवा या भक्तों को सम्मान करने का सौभाग्य न होने पर अभक्त को भक्त के रूप में सजाने की इच्छा होती है। क्या मयूरपुच्छ लगाकर कौवा मयूर हो सकता है? क्या नीलवर्ण श्रृगाल (सियार) पशुराज (सिंह) हो सकता है? कपटता कितने दिन तक ढकी रहेगी? सत्य प्रकाशित होगा ही। जो लोग कृष्णसेवा करते हैं, वे लोग दुर्बल नहीं हैं, वे लोग ही सबल या दृढ़चित्त हैं। कृष्णसेवा ही बड़ी चीज है, कृष्णसेवक ही बड़ा है, भाग्य अच्छा होने पर ही यह समझ में आता है। क्षुद्र धनमद, तुच्छ विद्यामद, अकिञ्चित्कर रूपमद इत्यादि को बहिर्मुखता के कारण बड़ा मान लेने से कृष्णसेवा में एवं कृष्णभक्त के प्रति उदासीनता आकर विपद उत्पन्न कराती है।

प्रश्न 345—क्या प्रतिष्ठा की इच्छा भक्तिसाधक है?

उत्तर—जड़ प्रतिष्ठा संग्रह करने से कोई लाभ नहीं है। वह वैष्णवी प्रतिष्ठा में बाधा डालनेवाली है। प्रतिष्ठारूपिणी सूअर की विष्ठा परित्यज्य है, यह सर्वदा स्मरण रखना होगा। पथ दो प्रकार के हैं—श्रेयः और प्रेयः। भक्तिपथ के पथिकगण श्रेयःपन्थी और निष्काम हैं। किन्तु प्रेयःपन्थी विषयीगण प्रतिष्ठाकामी हैं। इसीलिए भक्तसंग ही मंगलदायक है।

प्रश्न 346—क्या असत्संग परित्याग करना चाहिए?

उत्तर—वैष्णवों की क्रियामुद्रा को समझना सभी के भाग्य में नहीं होता है। यदि कोई अज्ञातवशतः मुझ पर कटाक्ष करता हैं, तो इससे मेरा उपकार ही होता है। किन्तु मेरे नित्य आराध्य श्रीगुरु एवं वैष्णवों से विद्वेषकर कोई अपने पितृपुरुषों के साथ ही नरकगामी होता है, इसी का मुझे दुःख है।

दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर अपना मंगल साधन करना ही बुद्धिमान व्यक्ति का कार्य है। मिथ्याभक्त (भक्त के अभिनयकारी) का संग करना विपत्तिजनक है। जो लोग भोग और त्याग को स्वीकार करते हैं, वे लोग भक्ति के

विपरीत पथ पर ही चल रहे हैं। आउल, बाउल इत्यादि ऐसे 13 अपसम्प्रदाय हैं। उनका संग ही दुःसंग है। ऐसे अधःपतित दुःसंग को अर्थात् धर्मध्वजी स्त्रीसंगियों के संग को सत्संग समझने पर निश्चितरूप से अधःपतन होता है। अतः आप लोग इन विपथगामियों का कभी संग मत करना। असत् व्यक्तियों का संग करने पर अधःपतन होता है।

जड़भोगी या जड़ रस में आनन्दित व्यक्ति अदीक्षित और दिव्यज्ञान वर्जित हैं। वे लोग मिथ्याभक्त या असत् हैं। इस प्रकार असत् का संग त्याग करके सत्संग अथवा साधु एवं शास्त्रों के उपदेशों को मिलाकर जीवनपथ में अग्रसर हों।

प्रश्न 347—कौन भगवान की सेवा के लिए व्यस्त नहीं होते हैं?

उत्तर—जिनका चित्त श्रीकृष्णपादपद्म की सेवा के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं की अभिलाषा करता है, उनकी प्रशंसा नहीं की जाती है। यह उनके मन्दभाग्य का विषमय फलस्वरूप है। जिनका मंगल विलम्ब से होगा, ऐसे अल्प बुद्धिवाले व्यक्ति ही भगवान की सेवा के लिए व्यस्त न होकर अन्याभिलाषी हो पड़ते हैं अर्थात् संसार के प्रति उनकी आसक्ति बढ़ जाती है। आप लोग उन सभी लोगों के लिए कोई चिन्ता मत करना। स्वकर्मफलभुक् पुमान् (व्यक्ति अपना कर्मफल भोग करता है)।

प्रश्न 348—बहादुर होना क्या अच्छा है?

उत्तर—नहीं। गुरुलंघन और प्रतिष्ठा सर्वनाशकारी हैं। अत्यधिक अर्थ और बहादुरी का गर्व भगवान के भक्तों के जीवन का प्रयोजनीय विषय नहीं है। उससे गुरु-लंघन जनित असुविधा हो सकती है। आप आशीर्वाद करें कि मेरा चित्त मैं बड़ा हूँ होने के लिए धावित न हो। मैं कई बार जिनको आत्मीय जानकर उनके लिए कर्कश एवं रूढ़ वाक्य बोलता हूँ, वे लोग मुझे क्षमा करेंगे— इसी उद्देश्य से कहता हूँ, किन्तु आपका विचार 'उल्टा बुझिलि (समझा), राम' हो

गया, यही दुःख है।

प्रश्न 349—दीक्षित भक्त पितृश्राद्ध किस प्रकार करेंगे?

उत्तर—दीक्षित नामाश्रित व्यक्ति अपने पिता की मृत्यु के दस दिन बाद ग्यारहवें दिन महाप्रसाद के द्वारा पिण्ड देकर शुद्ध भक्त विप्रगणों की सेवा करेंगे। इसे मठ में आकर करना ही अच्छा है। परन्तु जो लोग भक्त नहीं हैं या दीक्षित नहीं हैं, जो लोग हरिनाम नहीं करते हैं और समाज का वाक्यबाण सहन नहीं कर सकते, वे लोग स्मार्त मत के अनुसार पिण्ड देंगे। स्वयं श्रीहरिनाम करने पर भी अपने पितृपुरुषों को प्रेतज्ञान करना शास्त्रों द्वारा अनुमोदित नहीं है। किन्तु स्मार्तमत में जो इस प्रकार की व्यवस्था है, वह अधिकार विचार से है। विशेषतः स्मार्तमत के अनुसार श्राद्ध करने से पुनः मातृगर्भ में जाना पड़ता है। इसीलिए भगवान के भक्त स्मार्तमत के अनुसार श्राद्धकर्म को कभी भी स्वीकार नहीं करते हैं।

स्मार्तों का विचार शास्त्र विरुद्ध होने के कारण स्मार्तपद्धति को भक्तलोग स्वीकार नहीं करते हैं और मुक्तलोगों की विचार प्रणाली को समझना भी स्मार्तों के लिए कठिन है।

जो लोग भक्त नहीं हैं, वे लोग शूद्र-विचारों से 13 दिन तक शोक चिन्ह धारण और कच्चा हविष्यान्न ग्रहण करेंगे। नामाश्रित भक्तलोग प्रतिदिन महाप्रसाद ग्रहण करेंगे। वे स्मार्त विधिका पालन करने के लिए व्यस्त नहीं होंगे। परलोक गमन के पश्चात् वैष्णवलोग प्रेत होते हैं एवं उनका श्राद्ध भगवान को बिना निवेदित वस्तुओं से होगा, जगत में जो ऐसा कुमत प्रचलित है, ऐसे कुमतों से आप लोग दूर रहेंगे।

प्रश्न 350—असन्तुष्ट भाव कैसे जायेगा?

उत्तर—भगवान के श्रीचरणकमलों में भक्ति हो जाने पर जीव की असन्तुष्टि का कोई कारण नहीं रह जाता। इस पृथ्वी में हम भगवान की सेवा से विमुख होने के कारण

ही कर्मफल के अधीन हैं। कर्मफल के अनुसार कभी सुखभोग या प्रणय प्राप्त होता है और कभी दुःखभोग या विद्वेषभाव प्राप्त होता है। भगवान की सेवा की आवश्यकता का ज्ञान होने पर समस्त प्रकार के क्लेश और सुखैषणा (सुख की प्रबल इच्छा) हमारा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकती। तुम लोग सदा-सर्वदा भगवान की सेवा में ही अपना मन देना। इस प्रकार कोई भी किसी भी प्रकार से तुम्हें क्षति नहीं पहुँचा सकेगा। चंचल होकर किसी के प्रति असन्तुष्ट होकर यदि तुम संसार में रहोगे तो तुम्हें भगवान की सेवा का स्मरण नहीं होगा। वाक्‌युद्ध, देहयुद्ध या मानसिक असन्तोषरूपी युद्ध तुम्हें भगवान की सेवा नहीं करने देंगे। अतः वृक्ष की भाँति सहनशील होकर भगवान की इच्छानुसार कुरुक्षेत्र में ही रहो, इसी में तुम्हारा मंगल होगा। जिस दिन श्रीगौरहरि तुम्हें स्वयं दूसरे स्थान पर भेजेंगे, उस दिन की प्रतीक्षा करो।

प्रश्न 351—क्या आउल, बाउल वैष्णव नहीं हैं?

उत्तर—आउल, बाउल इत्यादि अवैष्णव हैं। वे लोग माताजी (स्त्री) लेकर कपट भेकधारी के वेष में घूमते रहते हैं। भक्तों की क्रिया और मिथ्याभक्तों की दुष्टता बाहर से एक जैसा दिखाई देने पर भी वास्तव में दूध और चूने के पानी की तरह दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है। शास्त्र कहते हैं—

असत्संग त्याग—एइ वैष्णव-आचार।
स्त्रीसंगी—एक असाधु, कृष्णाभक्त आर॥

अखाड़ेवाले बाबाजी लोग स्त्रीसंगी और कृष्ण अभक्त भी हैं। इसीलिए उनका दुःसंग दृढ़रूप से परित्यज्य है। अन्यथा हरिभजन असम्भव है। किन्तु किसी की निन्दा न कर उससे दूर रहना ही कर्तव्य है। असत्‌लोग असत्‌चिन्ता करते हैं तथा भक्तलोग भगवान की चिन्ता करते हैं। हमलोगों को इन दोनों में से भक्तों का पथ ही अनुसरण करना है।

प्रश्न 352—क्या ईश्वर के प्रति विश्वास की प्रचुर आवश्यकता है?

उत्तर—ईश्वर विश्वास की वृद्धि के लिए हमलोग मठ आदि में सब समय सेवकों को induce (प्रेरित) कर रहे हैं। अपने अपने भाग्य के अनुसार फल प्राप्त होता है। कृष्ण का अनुग्रह होने पर ही सभी लाभवान् होंगे। सब समय आश्रयजातीय रस की चर्चा करेंगे। ऐसा होने से जड़पुरुष का अभिमान तुम्हें कष्ट नहीं देगा। हमलोग अपनी मानस-चेष्टा से सभी प्रकार के भोगों में आबद्ध हो सकते हैं, किन्तु आत्मवृत्ति भक्ति विकसित होने पर शुद्ध-निर्मल आत्मा सब समय हरिकथा का अनुसन्धान करेगी।

प्रश्न 353—शरणागति क्या है?

उत्तर—सब विषयों में कृष्ण की इच्छा ही बलवती है। मेरी कुछ करने की इच्छा होने पर भी यदि कृष्ण की इच्छा न हो, तो वह निश्चय ही बदल जाएगी। उनकी इच्छा से अपनी इच्छा को मिलाना ही शरणागति या शान्ति है। समस्त प्रापञ्चिक विषय ही कृष्णलीला के अनुकूल हैं। संसार में हम सुख प्राप्त करने पर भगवान को भूल जायेंगे, इसीलिए हमारे मन की परीक्षा लेने के लिए ही दयामय भगवान ने इस प्रपञ्च जगत का निर्माण किया है। अतः इस जगत में सुखी रहने पर कृष्ण-विस्मृति अवश्यम्भावी होने के कारण ही यह (उनके द्वारा प्रपञ्च जगत का निर्माण) उनकी दया का परिचय है।

अपनी इच्छानुसार ब्रज में नहीं जाया जा सकता। राधाकृष्ण की शुभेच्छा और उनकी कृपा होने पर ही ब्रजवास सम्भव होता है। ब्रजयात्रा में हमारी अपनी इच्छा ही कृष्ण के प्रतिकूल अनुशीलन और बाधक स्वरूप है। चैत्रमास में हमारी मथुरा जाने की प्रबल इच्छा होने पर भी कृष्ण की इच्छा न होने के कारण ही हमारी इच्छा में बाधा पड़ गयी। अब हमने अगले आश्विन मास में जाने की इच्छा की है। फिर भी यदि कृष्ण की इच्छा दूसरी प्रकार की हुई, तो इसमें हमारा कोई हाथ नहीं है। बल्कि उनकी इच्छा के विरुद्ध चेष्टा करने पर हमें दोषी होना ही

पड़ेगा।

हरिभजन करने पर ही शरीर, मन और आत्मा—ये तीनों ठीक रहेंगे, किन्तु मेरी तरह भजन-विमुख होने पर ये तीनों प्रतिकूल होकर खड़े हो जायेंगे।

प्रश्न 354—क्या श्रीगौरांगदेव का पति रूप से भजन किया जा सकता है?

उत्तर—विषय-विग्रह श्रीकृष्ण ही भोक्ता हैं, इसके अतिरिक्त सब उनके भोग्य हैं। श्रीगौरसुन्दर विषयविग्रह श्रीकृष्ण होने पर भी भक्त भाव में विभावित हैं। वे कृष्ण होने पर भी कृष्ण के सुखानुसन्धान में व्यस्त हैं। श्रीकृष्ण माधुर्य-विग्रह और श्रीगौरांग औदार्य-विग्रह हैं। आस्वादक विषय-विग्रह होने के कारण श्रीगौरसुन्दर कृष्ण ही हैं। यदि जीव स्वयं को आस्वादक (कृष्ण) सोचकर अभिमान करता है, तो उसकी संसार-दशा अवश्यम्भावी है । कृष्ण के भोग्य जीव का भोक्ता अभिमान ही उसके पतन का कारण है। श्रीगौरसुन्दर स्वरूपतः विषय-विग्रह या भोक्ता होने पर भी वे आश्रय-विग्रह की लीला का अभिनय कर रहे हैं। इसीलिए महाप्रभु का पतित्व वैध विचार से श्रीलक्ष्मीप्रिया और श्रीविष्णुप्रिया के लिए ही है। इसके अतिरिक्त उनके अधीनगण शुद्धदास्य-रसाश्रिता दासी मात्र हैं। उसमें मुख्य रसानन्द शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता। जहाँ पर मधुर-रति में गौरसुन्दर के उद्देश्य से पति शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ पर गौरसुन्दर का कृष्ण रूप ही जानना होगा। जो अज्ञानतावशतः गौरसुन्दर को नागर कहते हैं, ऐसा गौरनागरी-मत अशास्त्रीय और अपराधमय है। इसीलिए श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने श्रीचैतन्यभागवत में लिखा है—

अतएव यत महामहिम सकले।
गौरांगनागर हेन स्तव नाहि बले॥

प्रश्न 355—क्या गृहव्रती का संग निन्दनीय है?

उत्तर—जिनकी इच्छा गृहव्रत धर्म को प्रबल करने की है, हम कभी भी उनके संग की प्रार्थना नहीं करते हैं। जो व्यक्ति हरि-भजन अनुरागी और कृष्णगृहधर्म में

अवस्थित है, उनकी सेवा करने के लिए ही हमारी प्रबल इच्छा होना आवश्यक है। दुःसंग परित्याग कर साधु का आश्रय ग्रहण करना ही कर्तव्य है। जो असाधु को साधु जानकर भ्रमित होते हैं, वे सर्वदा ही विपत्तियों में पड़ेंगे।

प्रश्न 356—मठ प्रतिष्ठा का उद्देश्य क्या है?

उत्तर—मठ साधारण लोगों के अनुग्रह के ऊपर प्रतिष्ठित नहीं है। श्रीकृष्ण-संकीर्तन द्वारा ही श्रीगौरांगदेव की सेवा होती है। **'यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः'**—यह श्लोक ही इसका प्रमाण है। श्रीकृष्ण ने गौरसुन्दर की लीला के रूप में जो आदर्श स्थापित किए, वही एकमात्र जीवों के लिए मंगल का मार्ग है।

भोगी और त्यागियों का मन प्रसन्न रखने के लिए मठों की स्थापना नहीं हुई है। केवल शुद्ध भक्ति का प्रचार करने के लिए ही मठों की स्थापना हुई है। मठ स्थापनरूपी हरिसेवा के द्वारा हमारा मंगल होगा।

केवल दो-एक रुपये के द्वारा ही मठ का उपकार पाना हमारा उद्देश्य नहीं है। फालतू लोगों से सहायता लेने के लिए हमको आग्रहान्वित नहीं होना चाहिए। परन्तु निर्दोष सत्य बात कहकर यदि किसी का उपकार कर सको, तभी कृष्णसेवामय मठ की सेवा करके धन्य हो जाओगे।

अनेक समय लोग हमारे साथ कपटता करेंगे। इन सबको हम भगवान की परीक्षा मानेंगे। जीव का सौभाग्य न रहने पर दुष्पार माया को पार करना बहुत कठिन कठिन है। मायावादी एवं भोगी दोनों ही बद्धजीव हैं। भगवान के प्रति उन्मुखलोग ही कृष्णभक्तों की कृपा से अपना हित और अहित समझ सकते हैं। अनेकलोग भोगों को प्रधानता देने के कारण सत्य की उपलब्धि से विरत हो जाते हैं।

शीघ्र ही गया जाकर प्रबल रूप से प्रचार करने की मेरी इच्छा है। कृष्ण की इच्छा होने पर वह निश्चय ही कार्य के रूप में परिणत होगी।

प्रश्न 357—भक्तों की चित्तवृत्ति कैसी होगी?

उत्तर—केनोपनिषद् में कहा गया है—सर्वशक्तिमान

भगवान की निर्दिष्ट शक्ति पाकर ही अधिकारिक देवता लोग अपनी अपनी शक्ति की परिचालना करते हैं। पुनः जब भगवान उनसे शक्ति ले लेते हैं तो उनकी शक्ति नहीं रहती। श्रीरूपानुग भक्तवृन्द अपनी शक्ति पर आस्था स्थापित न कर मूल स्थान में सब महिमा का आरोप करते हैं। हम भी श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीरूप, श्रीभक्तिविनोद तथा श्रीगुरुपादपद्म के उद्देश्य से सब कार्य करते हैं। भक्तिपथ या आनुगत्य का पथ छोड़ देने पर अहंकार-विमूढात्मत्व हमें ग्रास करता है।

प्रश्न 358—केवलाद्वैतवादियों के साथ वैष्णव-वैदान्तिकों का क्या पार्थक्य है?

उत्तर—अद्वैतवादी या मायावादी निर्विशेषवाद के पक्षपाती हैं तथा वैष्णव-वैदान्तिक नित्य-सविशेषवाद स्वीकार करते हैं। अद्वैतवादी प्रच्छन्न नास्तिक तथा वैष्णव-वैदान्तिक निष्कपट आस्तिक हैं। अद्वैतवादी आरोहवादी तथा वैष्णववैदान्तिक अवरोहवादी हैं। अद्वैतवादी शरणागति के विरोधी हैं तथा वैष्णववैदान्तिक नित्य ऐकान्तिक शरणागति के पक्षपाती हैं।

प्रश्न 359—भक्तलोग कौन सी नीति को स्वीकार करते हैं?

उत्तर—जो कृष्ण के वास्तविक भक्त हैं, वे कभी भी अनैतिकता के पक्षपाती नहीं हैं। समस्त सुनीतियाँ एकमात्र धर्ममूर्त्ति श्रीकृष्ण के चरणकमलों में ही पूर्णरूप से आबद्ध हैं। जीवात्मा का सर्वोच्च नीति-विज्ञान ही परमात्मा के प्रति अनुराग की अन्तिम सीमा एकमात्र कृष्णभक्तों में ही है।

महात्मा ख्रीष्ट के द्वारा प्रचारित उत्तम नीतियाँ अनन्त कोटि गुणा परिवर्धित और परिपूर्णता को प्राप्त होकर कृष्णभक्तों की प्रेम नीति की सेवा के अवसर की प्रतीक्षा कर रही हैं। हमारे विचार केवल लौकिक नीतियों में आबद्ध नहीं है। लौकिक नीतियों को अतिक्रमकर जो अलौकिक नीति है एवं उसे भी अतिक्रमकर जो पारमार्थिक प्रेम-प्रयोजन नीति है, वही नीति हमारी काम्य है। जब उस

अतिमर्त्य प्रेमनीति में कोई शुद्ध जीवात्मा प्रतिष्ठित हो जाता है, तब लौकिक नीतियाँ अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होती हैं। परन्तु लौकिक नीतियों के प्रति भक्तों का किसी प्रकार का द्वेष या अनुराग नहीं रहता है। बल्कि वे समस्त नीतियाँ ही प्रेमी पुरुष की सेवाकर धन्य होने के लिए परमार्थ नीति के पीछे दासी की भाँति अपेक्षा करती रहती है। पारमार्थिक व्यक्ति का चरित्र कभी भी नीतिहीन नहीं होता है। नीति-विद्वेषी या नीतिभ्रष्ट व्यक्ति कभी भी पारमार्थिक पदवाच्य नहीं है। व्यभिचार कभी भी भक्ति नहीं हो सकता।

प्रश्न 360—कृष्णलीला तो अश्लील नहीं हो सकती?

उत्तर—जितेन्द्रिय-कुल-चूड़ामणि पार्षद-भक्तलोग जिस कृष्णलीला की चर्चा करते हैं, जिस कृष्णलीला का श्रवण, स्मरण तथा कीर्तन करने पर पाप तथा संसार से मुक्ति हो जाती है, चिर शान्ति प्राप्त होती है, प्रेम प्राप्त हो जाता है, कामनाओं वासनाओं के हाथ से चिर काल के लिए छुटकारा मिल जाता है, वह कृष्णलीला कितनी सर्वोत्तम नीति परिपुष्ट है, समस्त श्रुतियों की कितनी आराध्यातम हैं, जागतिक नीतिवादी लोग अपने क्षुद्रतम मस्तिष्क से इसकी धारणा भी नहीं कर सकते हैं। कृष्ण की प्रेमलीला रोमिओ-जुलियेट की भाँति नायक-नायिका या आदर्श स्त्री-पुरुष की कामलीला की भाँति प्राकृत नहीं है। यहाँ का काम वृत्तिमात्र तथा अप्राकृत कृष्णराज्य का काम विग्रह विशिष्ट है। आत्मेन्द्रिय प्रीतिवाञ्छा या स्वसुखवाञ्छा का नाम 'काम' हैं तथा कृष्णप्रीति या कृष्णप्रीति विधान का नाम 'प्रेम' है। काम अन्धकार सदृश, प्रेम निर्मल भास्कर (सूर्य) सदृश है। अप्राकृत काम अर्थात् प्रेम कृष्ण-इन्द्रिय पूर्त्तिवाञ्छा रूप विग्रह विशिष्ट है। रिपु यहाँ के काम का निरन्तर ताड़ना करता है। अप्राकृत धाम में कृष्ण का चिन्मय-विग्रह माधुर्य कृष्णकाम को परिचालित करता है।

जगत के काम के चालक रिपु और प्रेम के चालक कृष्ण हैं। कृष्ण की लीलाओं को अश्लील नहीं कहा जा सकता, ऐसा सोचना भी अपराध है। क्योंकि कृष्ण ही अद्वितीय भोक्ता, परम वास्तव सत्य, निरंकुश इच्छालय

स्वराट् (Spiritual Despot) हैं।

प्रश्न 361—क्या धर्म का क्रम विकास है?

उत्तर—अवश्य ही है। धर्म-जगत में क्रम विकास के दो प्रकार के मार्ग देखे जाते हैं। एक श्रेणी में इन्द्रिय-तर्पण या आध्यक्षिक ज्ञान का क्रम विकास और दूसरी श्रेणी में कृष्णेन्द्रिय-तर्पण या अधोक्षज-ज्ञान का क्रम विकास। इन्द्रिय-तर्पण या आध्यक्षिक-ज्ञान का क्रम विकास जितना प्रगाढ़ होता है, उतनी ही नास्तिकता की मात्रा बढ़ती है। परन्तु भगवदिन्द्रियतर्पण का क्रम विकास जितना प्रगाढ़ होता है, आस्तिकता उतनी ही अपूर्ण से पूर्ण और पूर्ण से पूर्णतम रूप में परिस्फुट होती है। इन्द्रियतर्पण या आध्यक्षिक-ज्ञान के क्रम विकास में सर्वप्रथम नास्तिक्यवाद, द्वितीयस्तर में सन्देहवाद, तृतीयस्तर में अज्ञेयतावाद, चतुर्थस्तर में मायावाद एवं अन्त में शून्यवाद आकर उपस्थित हो जाता है। परन्तु दूसरी ओर भगवद्-इन्द्रियतर्पण या अधोक्षज ज्ञान के क्रम विकास में अर्थात् चिद्विलास के विचार में निर्विशेष-ब्रह्म और 'केवल वासुदेव' का विचार परित्याग कर लक्ष्मीनारायण, सीता-राम, रुक्मिणीश एवं राधा-गोविन्द की उपासना का क्रम-तारतम्य परिपुष्ट होता है।

मानव जाति इन्द्रियतर्पण के क्रम विकास में श्रीराधा-गोविन्द की अप्राकृत-लीला को अश्लील मानकर राधानाथ की धारणा से रुक्मिणीश की धारणा को कुछ अच्छा मानती है। बहुवल्लभ द्वारकेश की धारणा की अपेक्षा एकपत्नी व्रतधारी जानकीवल्लभ (सीतापति) की धारणा को अधिकतर नैतिक विचारपुष्ट मानते हैं।

वे रामचन्द्र की अपेक्षा लक्ष्मी-नारायण की धारणा को अधिकतर शुद्धभावयुक्त मानते हैं। फिर पुरुष-स्त्री मिश्रा उपास्य विचार की अपेक्षा एक-वासुदेव की कल्पित धारणा को अधिकतर नीतिपुष्ट मानते हैं। किन्तु एक-वासुदेव अर्थात् चित्शक्तिहीन शक्तिमान् परमेश्वर के अस्तित्व की कल्पना नास्तिकता या निर्विशेषवाद के प्रथम सोपान में पदविक्षेप मात्र है। ऐसा मानने पर इन्द्रितर्पणमयी नीति या आध्यक्षिकज्ञान क्रमशः उन्मार्ग में आरोहण करते-करते निर्विशेष-ब्रह्म के

विचार में आ जाता है अर्थात् परम चेतन (Over Soul) को उसके नित्य चिद्विलास धर्म से चिरवर्जित करना चाहता है। उसके व्यक्तित्व (Transcendental Personality) को ध्वंस करने की चेष्टा करता है। क्रमपूर्वक इन्द्रियतर्पण नीति अधिक अग्रसर होने की इच्छाकर अति आध्यक्षिक ज्ञान में जैन-धर्म और बौद्ध-धर्म का आवाहन करती हैं। जैन एवं बौद्ध-धर्म का अति-नीतिवाद चिन्मात्र से अचिन्मात्र में अस्तित्व से केवल नास्तित्व या शून्यत्व में परिणत हो जाता है। इन्द्रियतर्पण का क्रम विकास मानव-प्रज्ञा को इस प्रकार भगवद् इन्द्रियतर्पण के विचार से पतित कर बिल्कुल नास्तिकता के अतल जलधि में अचिन्मात्र समाधि प्रदान करता है। जीव जितना ही भगवदिन्द्रियतर्पण के विचार से विच्युत होकर आत्मेन्द्रियतर्पण के पथ में अग्रसर होता रहेगा, उतना ही ऐसे क्रमनास्तिकता की ओर दौड़ता रहेगा।

प्रश्न 362—क्या श्रीकृष्णसंकीर्तन में सभी का अधिकार है?

उत्तर—अवश्य ही। श्रीहरिनाम और भगवान श्रीहरि—दो पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं, एक ही वस्तु हैं। श्रीनाम और नामी अभिन्न हैं। श्रीकृष्णसंकीर्तन में सभी का अधिकार है। जिस प्रकार कृष्ण में समस्त शक्तियाँ हैं, उसी प्रकार नाम में सभी शक्तियाँ हैं। पुरुष हरिभजन करेगा, स्त्री नहीं कर सकती, स्वस्थ व्यक्ति हरिभजन करेगा, बीमार व्यक्ति नहीं कर सकता, जिसके शरीर में खूब ताकत नहीं है, वह हरिभजन नहीं कर सकता—इस प्रकार के विचार नामसंकीर्तन में नहीं हैं। वह बालक है, मैं वृद्ध हूँ, इसलिए उसके साथ मैं हरिकीर्तन नहीं करूँगा, मैं पण्डित हूँ, मूर्खों के साथ मैं हरिकीर्तन नहीं करूँगा; मैं कुलीन हूँ, नीच कुल में जन्मे व्यक्ति के साथ हरिकीर्तन नहीं करूँगा—इस प्रकार के मनोधर्म और देहधर्म के विचार आत्मधर्म श्रीकृष्णसंकीर्तन में नहीं है। मल-मूत्र त्याग के समय अथवा पापयुक्त हृदय में हरिनाम नहीं कर सकता—ऐसा विचार भी श्रीकृष्णसंकीर्तन में नहीं है। मलमूत्र त्याग करते समय हरिनाम किया जाता है, पापी व्यक्ति भी हरिनाम कर

सकता है; किन्तु जो लोग 'हरिनाम करके पाप को पचाऊँगा'—ऐसी कपटता का आश्रय करते हैं, वे लोग हरिनाम नहीं कर सकते, नाम के बल पर पाप करने की प्रवृत्ति रहने पर हरिनाम नहीं होता।

प्रश्न 363—अत्यन्त क्षुद्र (छोटी) वस्तु जीव विभु (बृहत्) भगवान की सेवा किस प्रकार कर सकता है?

उत्तर—जीव मैं अचित् क्षुद्र पदार्थ नहीं हूँ, मैं चिन्मय क्षुद्र पदार्थ हूँ। इस अति क्षुद्र जीव में अनन्त की सेवा करने का सामर्थ्य है। चेतन का गठन ऐसा नहीं है कि अणु होने पर वह अनन्त की सेवा नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए कहा जाता है—चिनगारी को आधार मिल जाने पर वह समग्र जगत को जलाकर राख कर सकती है।

प्रश्न 364—सेवा कौन सी वस्तु है?

उत्तर—जिसमें ठाकुर का सुख है, उसी का नाम 'सेवा' है। पुनः जिसमें अपनी सुख सुविधा होती है, उसका नाम 'भोग' है। भगवान श्रीहरि इस जगत में दो प्रकार से हमारे पास आते हैं—(1) अर्चावतार (विग्रह) के रूप में (2) नाम के रूप में। इन अर्चावतार और नामावतार के प्रति जिनकी श्रद्धा है, उनका ही मंगल होता है।

कपटता रहने पर श्रीविग्रह की सेवा और श्रीनामकीर्तन नहीं होगा। शुद्धभक्त की निष्कपट सेवा और संग के सिवा हमारा मंगल हो ही नहीं सकता। भगवान् और भक्त की वञ्चना करने पर भक्ति नहीं होती। भगवान की सेवा और सेवा का अभिनय—दोनों पृथक् वस्तुएँ हैं। भगवान की श्री अर्चामूर्ति की सेवा जिससे भलीभाँति हो सकती है, उसके लिए हमको विशेष यत्न करना होगा। श्रीविग्रह साक्षात् भगवान् हैं। इसलिए हर कोई व्यक्ति श्रीविग्रह की सेवा नहीं कर सकता। वेतनभोगी लोगों के द्वारा ठाकुर की पूजा या रसोई आदि सेवा नहीं होती। सद्गुरुचरणाश्रित निष्कपट सेवक ही श्रीविग्रहरूपी भगवान् और श्रीनामरूपी भगवान की सेवा कर सकते हैं। क्योंकि

रुपये लेकर भगवत् सेवा नहीं होती—भगवत् सेवा प्राण देकर प्रीति के साथ की जाती है।

विष्णु-वैष्णव की सेवा ही सबसे उत्तम है—ऐसा दृढ़ विश्वास जब तक नहीं होगा, तब तक हमारा किसी भी प्रकार का मंगल नहीं हो सकता। इसलिए सबसे पहले विशेष श्रद्धा के साथ श्रीविग्रह की सेवा करना कर्तव्य है, किन्तु श्रीविग्रह सेवा और श्रीनाम सेवा भगवान के सुख के लिए ही करनी होगी। अन्य कोई उद्देश्य रहने पर सेवा नहीं होगी। इसलिए हम सभी के निकट प्रार्थना कर रहे हैं —हे बन्धुओ! आप लोग सदाचार से युक्त होकर भगवान के सुख के लिए भगवत्-सेवा कीजिए। मंगल का बाहरी चेहरा मंगल का मार्ग नहीं है (बाह्यरूप में जो मंगल जैसा दिखाई देता हैं, वास्तव में वह मंगल नहीं है।) कपटता कर नौटंकी के कृत्रिम नारदमुनि के रूप में सजने से लाभ नहीं है। आप सचमुच भगवत् सुख के लिए अर्चन और कीर्तन कीजिए, तभी मंगल होगा।

प्रश्न 365—हम कृष्ण को क्यों नहीं देख पा रहे हैं?

उत्तर—कृष्ण अधोक्षज वस्तु होने के कारण जड़ इन्द्रियज ज्ञान के द्वारा उनको जान नहीं सकते। कृष्ण किसी के भोग्य नहीं हैं; वे ही एकमात्र भोक्ता हैं, अतः सभी उनके भोग्य हैं। कृष्णविमुखता के कारण ही हमारी वर्तमान धारणा (विचारधारा) कृष्ण को देखने नहीं देती। कृष्ण की माया की दो वृत्तियाँ हैं—(1) कृष्ण को देखने नहीं देना, (2) कृष्ण को दूर हटा देना। इन दोनों असुविधाओं को दूर कर सकते हैं—एकमात्र कार्ष्ण (कृष्ण के भक्त)।

कुलीन ग्रामवासियों के प्रश्न के उत्तर में श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—कृष्णसेवा, कार्ष्णसेवा और नामसंकीर्तन—ये तीनों ही जीव के कृत्य हैं। भजनीय वस्तु हैं—भगवान्, भजनकारी हैं —भक्त और भजनवृत्ति हैं—भक्ति; तीनों ही नित्य हैं। भगवान की सेवा के लिए अविमिश्रित (मिलावट से रहित) चेष्टा न करने तक इसका अनुभव नहीं किया जा सकता।

मिश्रित चेष्टा से भगवद् अनुभव सम्भव नहीं है।

हम कपटतापूर्वक मुख से कह रहे हैं—हम विष्णु के उपासक है—कृष्ण के दास हैं; परन्तु वास्तव में हम इन्द्रियों के दास—भोगी हैं। जब तक जीव में शुद्ध सेवा वृत्ति उदित नहीं होती, तब तक उसका किसी भी प्रकार का कृष्णज्ञान नहीं हुआ है, ऐसा जानना होगा। श्रीगौरसुन्दर की कथा हमारे हृदय में प्रविष्ट नहीं हुई है, इसीलिए हमारी यह अवस्था है। कृष्ण और कार्ष्णसेवा ही जीव का एकमात्र कृत्य है, जब तक हम इसका अनुभव नहीं कर सकते हैं, तब तक हम वञ्चित हैं। हम जब निष्कपट होकर कार्ष्ण की शरण में जाते हैं, तभी ऐसी दुर्बुद्धि से छुटकारा पा सकते हैं।

जो लोग निरन्तर भगवद् उपासना करते हैं, उनके श्रीहस्त द्वारा उन्मीलित चक्षुओं से ही हमारा भगवद् दर्शन सम्भव है। जो सर्वक्षण भगवद् भजन करते हैं, जो हर पग पर सब प्रकार से भगवान की सेवा करते हैं, सर्वस्व देकर भगवान की सेवा के अतिरिक्त जो अन्य कुछ भी नहीं करते, ऐसे किसी महापुरुष की सेवा ही हमलोगों को शुद्ध कृष्णभजन दे सकती है—कृष्णदर्शन करा सकती है।

कृष्णभक्त श्रीगुरुदेव की कृपा से जब हरिकीर्तन करने का सौभाग्य होता है, तब संकीर्तनरूपी कृष्ण अत्यन्त अयोग्य व्यक्ति की भी सभी प्रकार की असुविधाओं को कृपापूर्वक दूरकर उसकी रक्षा करते हैं, उसे दर्शन देते हैं।

भोगी व्यक्ति को भोक्ता भगवान का दर्शन नहीं होता है। भक्त-गुरु की कृपा से जब वह अपने को कृष्ण-भोग्य जान पाता है और कृष्णसेवा और कार्ष्णसेवा को अपना जीवन बना लेता है, तभी भगवत् कृपा से उसे भगवद् दर्शन होता है।

त्यागी ने संसार त्याग के साथ भगवान का भी त्याग किया है, इसीलिए उसे भगवद् दर्शन नहीं होता। केवल भक्त ही गुरुकृपा प्रदत्त भक्तिरूपी चक्षुओं से भगवान का दर्शन करते हैं।

प्रश्न 366—हमारी रक्षा कैसे होगी?

उत्तर—जो सब समय भगवान की कथाओं की विवेचना करते हैं, जो सम्पूर्णरूप से भगवान के ऊपर निर्भर हैं, उनके श्रीचरणकमलों में शरण ग्रहण करना ही हमारे लिए रक्षा प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। वे पतितपावन हैं, दीनबन्धु हैं। उनके शरणापन्न होने पर वे अवश्य ही हमारी रक्षा करेंगे।

प्रश्न 367—हमें भगवान की अनुभूति कैसे होगी?

उत्तर—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है—**कृष्णसेवा, कार्ष्णसेवा (कृष्णभक्तों की सेवा) और नामकीर्तन**—जीव के तीन ही कृत्य हैं। जिस वस्तु की सेवा की जाय, वे ही नित्य सेव्य हैं और जो सेवा करते हैं, वे सेवक हैं। अतः सेवक की वृत्ति ही सेवा या भक्ति है। भगवान भजनीय वस्तु हैं, भजनकारी भक्त हैं तथा भजन की वृत्ति ही भक्ति है। ये तीनों ही नित्य हैं। ये तीनों ही काल के द्वारा क्षुब्ध होने वाली वस्तुएँ नहीं हैं, पाँचभौतिक वस्तुओं की भाँति जन्म-स्थिति-प्रलय के अधीन नहीं हैं। भगवान की सेवा के लिए अविमिश्रा चेष्टा न करने तक इन तीनों की उपलब्धि नहीं हो सकती। मिश्रा चेष्टा अर्थात् भक्ति के अतिरिक्त ज्ञान-कर्म आदि की चेष्टा से भगवद्वस्तु की उपलब्धि नहीं हो सकती।

यदि हम श्रेयःपथ का वरण न करें, सर्वक्षण भगवान की सेवा में ही व्यस्त न रहें, तो हम प्रेयःपथ को ही श्रेष्ठ मानकर नरक के मार्ग में ही धावित होंगे। हम संसार के निकट कपटतापूर्वक कह रहे हैं कि हम विष्णु के उपासक हैं—कृष्ण के दास हैं, किन्तु वास्तव में हम इन्द्रियों के ही दास हैं, स्त्री-पुत्र-कन्या आदि के ही दास हैं, अकर्मी या भोगी हैं। जब तक जीवों की भगवान के प्रति शुद्धा, अविमिश्रा या निष्काम सेवावृत्ति उदित नहीं होती, तब तक भगवान के विषय में हमें लेशमात्र भी ज्ञान नहीं हुआ है, ऐसा जान लेना चाहिए। हमारे हृदय में श्रीगौरसुन्दर की कृपा प्रविष्ट न होने के कारण ही हमारी ऐसी दुरवस्था हो रही है —हमारे हृदय में इतनी दुर्वासनाएँ जग रही हैं।

जब तक हमें इसकी उपलब्धि नहीं हो जाती कि कृष्णसेवा तथा कार्ष्णसेवा हमारे लिए एकमात्र कृत्य है, तबतक हम वञ्चित ही रहेंगे। अपनी दुर्बुद्धि से हम कब छुटकारा पा सकते हैं? जब हम निष्कपट होकर कार्ष्ण (कृष्णभक्तों) की शरण ग्रहण करेंगे।

निरन्तर भगवान की उपासना करते हैं, उनके आश्रय में ही, उनके हाथ से ही खुले चक्षुओं के द्वारा हमें भगवान का दर्शन सम्भव है। यदि नाटक में नारद के रूप में सजे व्यक्ति को ही असली नारद मान लें, यदि चूने के पानी को दूध मान लें, तो हम ठगे जायेंगे। जो सब समय भगवान की सेवा की ही चेष्टा करते हैं, जो पग-पग पर सम्पूर्णरूप से भगवान की सेवा करते हैं, ऐसे किसी महापुरुष की सेवा ही हमें शुद्ध कृष्णभजन प्रदान कर सकती है तथा हमें भगवान की अनुभूति प्रदान कर सकती है।

जब तक हम मनोधर्म के द्वारा चालित होकर जड रूप-रस से आच्छन्न होकर इन्द्रियतर्पण में ही व्यस्त हैं, तब तक भगवान उपलब्धि नहीं हो सकती। कृष्ण, भक्त की अपनी सम्पत्ति हैं। अतः भक्त ही कृष्ण को दे सकते हैं। भोगों में उन्मुख चित्त में भगवान की अनुभूति नहीं हो सकती। केवल सेवोन्मुख चित्त में ही कृष्ण की अनुभूति सम्भव है। अपने को भगवान का सेवक मानकर सब समय उनकी सेवा करते-करते ही सेव्य की अनुभूति या प्रकृष्ट ज्ञान प्राप्त हो सकता है। भक्तिपथ में या सेवापथ में ही सेव्य भगवान का दर्शन सम्भव अन्य किसी उपाय से नहीं।

प्रश्न 368—कृष्ण प्राप्ति का अर्थ क्या है?

उत्तर—कृष्ण प्राप्ति का तात्पर्य इस जड़ जगत से सम्पूर्णरूप से विरक्त हो जाना है। मुक्त होने के बाद हृदय में कृष्ण का दर्शन ही कृष्ण-प्राप्ति है। जितनी भी प्राप्त करने की वस्तुएँ हैं, उनमें से कृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ एवं अन्तिम प्राप्ति की वस्तु हैं। प्रेम के द्वारा ही कृष्ण की प्राप्ति होती है। बिना प्रेम नाहिं मिलें नन्दलाला।

प्रश्न 369—कृष्ण का आविर्भाव क्या है?

उत्तर—प्रत्येक जीव के हृदय में जो शुद्ध चेतन का भाव है, उसमें पूर्णचेतन का पूर्ण प्रकाश ही कृष्ण का आविर्भाव है। शुद्धचित्त में कृष्ण का उदय ही कृष्ण का जन्म है। वर्तमान समय में हम लोग जड़ विषयों में अभिनिविष्ट हैं। यदि हम किसी प्रकार से उस जड़भाव को, कर्ताभिमान को या विषयासक्ति को दूर कर सकें, तभी हमारी नाप लेने की बुद्धि या संसार से छुट्टी हो सकती है।

प्रश्न 370—क्या भगवान अचिन्त्य वस्तु हैं?

उत्तर—यह बात सत्य हैं कि भगवान श्रीकृष्ण अचिन्त्य हैं, किन्तु वे केवल अचिन्त्य नहीं हैं, सेवोन्मुख चिन्त्य हैं। श्रीकृष्ण निर्गुण होने पर भी गुणात्मा हैं, समस्त कल्याणमय गुणों के सागर हैं। वे एक ही साथ चिद्-गुणों से गुणी हैं तथा मायिक गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण हैं। उनमें समस्त गुण हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत के आधार हैं। जगत उनकी मूर्ति नहीं है, बल्कि जगत के भीतर मूर्तिमान वे ही हैं।

इन्द्रियज्ञान के द्वारा जिस किसी भी वस्तु की उपलब्धि होती है, वह भोग की वस्तु है। जगत कृष्ण नहीं है, बल्कि कृष्ण जगत के आधार हैं। जबतक हम उन्हें प्रणाम नहीं करेंगे अर्थात् जब तक हम अपना अहंकार का परित्याग नहीं करेंगे, तब तक हम उनके पास नहीं जा सकते। श्रीहरि ब्रह्मवस्तु हैं। वे कोई सीमा-विशिष्ट वस्तु नहीं हैं। अतः हम उन्हें माप या भाग करके ले नहीं सकते।

प्रश्न 371—हम हरिकथा कहाँ सुनेंगे?

उत्तर—हरिभक्तों के मुख से ही हरिकथा सुननी चाहिए। जो सब समय भगवान की सेवा करते हैं, उन साधुओं के श्रीमुख से भगवान की वीर्यवती कथाओं को सुनते-सुनते हम भगवान की शक्ति या उनकी महिमा को जान सकते हैं। हृदय देकर तेजस्वी साधुओं के मुख से हरिकथा श्रवण करने से हमारे मन में भी दृढ़ता आयेगी। जिससे हम क्रमशः श्रद्धा, रति और प्रेमभक्ति प्राप्तकर

कृतार्थ हो सकते हैं। तब बाह्य जगत की शक्ति हमें पराजित नहीं कर सकती।

प्रश्न 372—असली साधु कौन है?

उत्तर—बड़ी-बड़ी जटाओं को धारण करने से त्यागी सजने से या बहुत बड़ा गृहस्थ बनने से ही किसी को साधु नहीं कहा जा सकता। सब समय भगवान की कथाओं में निरत रहने वाले व्यक्ति का नाम ही साधु है। जो नित्यकाल सब समय भगवान के लिए ही चेष्टा करते हैं, जिनकी समस्त चेष्टाएँ ही कृष्णके लिए होती हैं, वे ही असली साधु हैं।

हरिकथा किसे कहते हैं? जिससे भगवान को सुख होता है, ऐसी कथाओं का नाम ही हरिकथा हैं। ऐसी हरिकथा ही जिनका जीवन है, जो हरिकथा छोड़कर रह नहीं सकते, वे ही साधु हैं। जिसकी कथा कृष्ण को सुख प्रदान करती है, कृष्ण के सुख के लिए ही जो हरिकथा कहते हैं, जिनके हृदय में कर्ता अभिमान या वक्ता अभिमान नहीं है, जिनके हृदय में कृष्णदास का अभिमान होता है, ऐसे कृष्णसेवा में रत भक्त ही साधु हैं। कर्मी, ज्ञानी या योगी कोई भी साधु नहीं हैं। केवल निष्काम भक्त ही साधु है।

प्रश्न 373—क्या भक्तों का देह भगवान का मन्दिर है?

उत्तर—जीवों का देह भगवद् मन्दिर है, चेतनमय मन्दिर है। ईंट, पत्थर, लकड़ी के द्वारा बनाये गये मन्दिर में लेप्या, लेख्या आदि अर्चा विग्रह रखे जाते हैं, परन्तु भगवान के भक्तों के चिन्मयदेह रूपी मन्दिर में श्रीभगवान नित्य विराजमान रहते हैं। भक्तों का महाप्रसाद ग्रहण करना भी भगवान के मन्दिर की रक्षा की चेष्टामात्र है।

प्रश्न 374—भागवत पाठ कौन कर सकता है?

उत्तर—श्रीमद्भागवत की सेवा ही जिसका एकमात्र कार्य या जीवन हैं, वे प्रतिपग में प्रतिग्रास में, प्रत्येक श्वास

में हरिसेवा करते हैं। श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवद्-वस्तु है। भागवत व्यापार की वस्तु नहीं है, बल्कि सेवा की वस्तु है —उपास्य वस्तु है। इसलिए वेतन लेकर पाठ करने वाले या ठेका लेकर कभी भी भागवत-पाठ नहीं कर सकते। अतएव सब समय ध्यान रखना चाहिए कि भागवत-पाठक 24 घण्टे ही निष्कपट रूप से भगवान की सेवा में लगे रहते हैं या अन्य कार्य करते हैं। A stipend holder or a contractor can not explain Bhagabat. First of all refrain from approaching the professional priest. See whether he devotes his time fully to the Bhagabat or not.

पुराणतीर्थ होने से ही भागवत पाठ नहीं किया जा सकता। **'भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया।'** अर्थात् केवल भक्ति के द्वारा ही भागवत का पाठ किया जा सकता है, बुद्धि या टीकाओं के द्वारा नहीं। जो भागवत पाठ करेगा, वह स्वयं भी भागवत होना चाहिए। धन का लोभ, प्रतिष्ठा का लोभ या किसी प्रकार का जागतिक आकर्षण होने पर वह भागवत-पाठक होने पर भी भागवत बहुत दूर होते हैं। उसके मुख से भागवत सुनकर भागवत के वास्तव सत्यवस्तु भगवान के प्रति लोगों का चित्त आकृष्ट नहीं हो सकता।

जो स्वयं भागवत नहीं है, जिसका जीवन भागवत की शिक्षाओं से गठित नहीं है, उसके मुख से श्रीमद्भागवत का पाठ नहीं हो सकता। क्योंकि वह व्यक्ति स्वयं ही वञ्चित है, इसीलिए भागवत-पाठ का अभिनय करने पर भी वह दूसरों की वञ्चना ही करता है।

स्कूल-कालेजों के शिक्षक या अध्यापकों के साथ जैसा सम्बन्ध होता है, भागवत-पाठक के साथ वैसा सम्बन्ध नहीं होता। जो अध्यापक छात्रों को अच्छी प्रकार से समझा सकते हैं, वे उत्तम अध्यापक कहे जाते हैं। उनका जीवन कैसा भी क्यों न हो, इससे कुछ आता-जाता नहीं। परन्तु भागवत-पाठक के लिए ऐसा विचार नहीं हैं। भागवत-पाठक आचारवान् प्रचारक होंगे। शास्त्रों में ऐसा ही वर्णन है—

आपनि आचरि धर्म जीवेर सिखाय।
आपने ना कैले धर्म शिखान ना जाय॥

(चैतन्यचरितामृत)

अर्थात् जो आचार्य होता है, वह स्वयं ही आचरणकर जीवों को सिखाता है। क्योंकि स्वयं आचरण न करने पर किसी को सिखाया नहीं जा सकता। जिसका चरित्र खराब है, जिसके हृदय में काम प्रबल है, जिसके हृदय में प्रतिष्ठा या धन की कामना है, वह कभी भी श्रीमद्भागवत का पाठ नहीं करता। श्रीमद्भागवत पाठ के छल से वह केवल इन्द्रिय-तर्पण ही करता।

प्रश्न 375—कैसे गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिए?

उत्तर—जो गुरुदेव सब समय हरिभजन करते हैं, सौभाग्यवान होने पर ही ऐसे गुरु का चरणाश्रय प्राप्त होता है। हमें ऐसे गुरु का चरणाश्रय करना चाहिए, जो शत प्रतिशत भाग ही भगवान की सेवा में नियुक्त हैं, अन्यथा हम उसके आदर्श के अनुसार शत प्रतिशत भगवान की सेवा में रत नहीं रह सकते।

अनाचारी वाक्यसार वक्ता (Platform speaker) अथवा व्यवसायी पुरोहित (Professional priest) गुरु नहीं हो सकते। दुर्भाग्यवशतः ऐसा गुरु प्राप्त होने पर भी हरिभजन नहीं होगा, उनसे हमारा मंगल नहीं होगा। गुरु निष्काम, जितेन्द्रिय, शास्त्रज्ञ तथा भगवान की अनुभूति सम्पन्न होना चाहिए। शास्त्र कह रहे हैं—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयः उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

(श्रीमद्भागवत 11/3/21)

प्रश्न 376—प्रेयःपन्थी एवं श्रेयःपन्थी के विचारों में क्या पार्थक्य है?

उत्तर—श्रेयःकथा (आत्मकल्याण सम्बन्धी कथाएँ) अनेक समय प्रेयः (विषयभोग सम्बन्धी कथाओं) की भाँति हृत्कर्णरसायन नहीं भी हो सकती अर्थात् केवल हृदय एवं मन को अच्छी नहीं भी लग सकती, किन्तु प्रेयःकथा सर्वदा ही हृत्कर्णरसायन होगी ही। श्रोता अनेक समय सोचता है

कि मुझे जैसा अच्छा लगता है, वक्ता के मुख से वैसा ही निकले। किन्तु श्रेयःपन्थी (आत्मकल्याण के इच्छुक व्यक्ति) सोचते हैं कि इस समय अरुचिकर होने पर भी निरपेक्ष सत्य कथाओं का मुझे श्रवण करना चाहिए।

प्रेयःपन्थी सर्वदा ही स्वसुख अन्वेषण में ही व्यस्त रहते हैं, किन्तु श्रेयःपन्थी सब समय कृष्ण को सुखी करने की चेष्टा में ही तत्पर रहते हैं। प्रेयःपन्थी श्रीव्यासदेव का अनुसरण नहीं करते। किन्तु श्रेयःपन्थी महाजनों के द्वारा प्रदर्शित पथ का ही अवलम्बन करते हैं—**महाजनो येन गतः स पन्थाः** अर्थात् उनका विचार होता है कि महाजनों का जो मत हैं, वहीं मत सार है। श्रेयःपन्थी श्रौतपन्थी या अवरोहवादी हैं, किन्तु प्रेयःपन्थी लोग अश्रौतपन्थी या आरोहवादी हैं।

प्रश्न 377—असली परोपकार क्या है?

उत्तर—अनन्त कोटि जीव विष्णु विमुख होकर अनन्त कोटि रूपों में विष्णु से विद्वेष करने के कारण ही इस जेलखाने में या महामाया के दुर्ग में आ गिरे हैं। इनमें से यदि एक व्यक्ति को भी बचाया जा सके अर्थात् एक व्यक्ति को भी यदि कृष्ण के प्रति उन्मुख कर सकें, तो अनन्त कोटि अस्पताल एवं विद्यालय आदि स्थापन करने की अपेक्षा अनन्त परोपकार का कार्य होगा। मैं यदि भारतवर्ष का अधिवासी हूँ, तो कार्यतः मेरे अनित्य अभिमान से भारतवर्ष का interest (स्वार्थ) देखना मेरा कर्तव्य है, किन्तु यदि मैं विदेश में जन्म ग्रहण करूँ, तो भारतवर्ष के विरुद्ध होने पर भी वहाँ के interest में कार्य करना ही मेरा कर्तव्य हो जायेगा। श्रीचैतन्यदेव या उनके भक्तों की ऐसी देशगत, कालगत, पात्रगत अचैतन्यप्रसूत क्षुद्र साम्प्रदायिकता नहीं है। वे लोग देश का जो उपकार करते हैं, देशभक्ति का जो आदर्श दिखाते हैं, उससे एक व्यक्ति का (परिणाम में अकल्याणकारी) सामयिक उपकार एवं दूसरे व्यक्ति का अपकार या हिंसा नहीं होती है। उस उपकार का या उस देशसेवा का फल समग्र देश, समग्र पात्र तथा समग्र काल प्राप्त कर सकते हैं। यह केवल कहने की ही

बात नहीं है, बल्कि यही सबसे बड़ी सत्य बात है।

Flatterer (खुशामदकारी) असली शिक्षक नहीं हैं। वे गुरु नहीं हैं, प्रचारक नहीं हैं, शिक्षक नहीं हैं। जो प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए या अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए जगत के अनन्त कोटि रोगियों की रुचि के अनुसार ही बोलते हैं या प्रेयः के मत के अनुसार ही मत दिया करते हैं, वे लोग शुभानुध्यायी नहीं हैं, बल्कि शुभानुध्यायी के विरुद्ध मतावलम्बी हैं। ऐसे लोगों से कथा नहीं सुननी चाहिए। इससे अपना एवं दूसरों का अकल्याण ही होता है, सर्वनाश होता है।

प्रश्न 378—क्या मन विश्वासघातक है?

उत्तर—अवश्य ही। अवसर पाते ही यह हमारा सर्वनाश कर देगा। इस पागल मन या बदमाश मन की काम-क्रोध आदि की दासता करने की बहुत रुचि होती है। जगतवासियों को काम-क्रोध आदि की सेवा में या माया की सेवा में नियुक्त करने के लिए यह बदमाश मन उपदेष्टा का आसन ग्रहण कर लेता। यह बहिर्मुख मन हरि-गुरु-वैष्णवों के प्रति विद्वेष करवाने के लिए सर्वदा ही व्यस्त रहता है। इसलिए हमें मन की बात न सुनकर साधु गुरु-शास्त्रों की ही बात सुननी चाहिए।

प्रश्न 379—सत्यकथा सब लोग क्यों नहीं सुनते?

उत्तर—यह बात बिल्कुल सत्य है कि जगत में बहुत से लोग सत्यकथा को ग्रहण नहीं करते, क्योंकि सत्यकथा प्रेयः नहीं श्रेयः है।

कितने ही लोग धर्मवीर, कर्मवीर का नाम लेकर जगत के लोगों का सिर खा गये हैं, इसलिए उन्हें समझाने के लिए हमें शत शत गैलन रक्त खर्च करना पड़ रहा है। तथापि असली सत्य बात को बहुत ही कम लोग धारण कर पा रहे हैं। अच्छे संस्कार न रहने पर या अच्छा भाग्य न रहने पर सत्यकथा—कृष्ण की कथा सुनने की इच्छा नहीं जाग सकती।

श्रेयः एवं प्रेयः—ये दोनों ही चीजें मनुष्य को आश्रय

करके रहती हैं। किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति या सज्जन लोग इन दोनों ही वस्तुओं के तत्त्व को जानकर यह विचार करते हैं कि श्रेयः ही मुक्ति का कारण तथा प्रेयः बन्धन का कारण है। भाग्यशाली व्यक्ति ही प्रेयः को छोड़कर श्रेयः का आश्रय ग्रहण करते हैं। विवेकहीन अल्पबुद्धि सम्पन्न व्यक्ति योग अर्थात् अलब्ध वस्तु की प्राप्ति एवं क्षेम अर्थात् लब्ध वस्तुओं की रक्षा के लिए ही प्रार्थना करते हैं। शास्त्र कहते हैं—श्रेयः कथा सुनने वाले लोग बहुत ही कम मिलेंगे। यदि दो-चार लोग मिल भी जाएँ, तो सुनकर भी अनेक लोग उसकी उपलब्धि नहीं कर सकते। श्रेयः विषय के तत्त्वविद् निपुण वक्ता जगत में अति दुर्लभ हैं। और यदि भगवान की कृपा से ऐसे उपदेष्टा प्राप्त हो भी जाएँ, तो ऐसे आचार्य के अनुगत श्रोता और भी दुर्लभ हैं।

जो निरपेक्ष नहीं हैं, ऐसे अनन्त कोटि वक्ता नरक में चले जाएँगे, निर्भीक होकर जो निरपेक्ष सत्यकथा बोली जाती है, सैकड़ों जन्मों या सैकड़ों युगों के बाद भी कोई न कोई उस सत्यकथा को अवश्य ही समझ पायेगा। बहुत कष्ट से अर्जित सैकड़ों गैलन रक्त खर्च किये बिना एक व्यक्ति को भी सत्यकथा समझायी नहीं जा सकती।

प्रश्न 380—क्या श्रीचैतन्यदेव केवल बंगालियों के ही ठाकुर हैं?

उत्तर—श्रीकृष्णचैतन्यदेव साक्षात् भगवान हैं। वे सम्पूर्ण जगत के ईश्वर हैं। नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र ही श्रीचैतन्यदेव के रूप में जगत कल्याण के लिए अवतीर्ण हुए। अतः वे समस्त जगतवासियों के ही उपास्य हैं, इस विषय में अधिक क्या कहा जाय। इसीलिए कहता हूँ कि श्रीचैतन्यदेव केवल बंगालियों के ही ठाकुर नहीं हैं, वे मनुष्यमात्र के ही ठाकुर हैं—विश्वब्रह्माण्डवासी समस्त जीवों के ठाकुर हैं। यहाँ तक कि वे ब्रह्मा-शिव आदि देवताओं के भी ठाकुर हैं। वे परम पुरुषोत्तम, परमेश्वर वस्तु हैं।

प्रश्न 381—परमार्थ जगत में किसे सफलता प्राप्त होती है?

उत्तर—भगवान् के अतिरिक्त और दूसरी वस्तु नहीं है। जो ऐसा विचार करते हैं कि भगवान के अतिरिक्त दूसरी वस्तु भी है, उनका विचार खण्डितधर्म से युक्त है। **'सदेव सौम्येमिदमग्रमासीत् एकमेवाद्वितीयम्'**—इस वाक्य के अनुसार वस्तु दस-पाँच नहीं हैं, केवल एक ही है। Absolute Truth is only one without a second. जो सोचते हैं—Absolute Truth challangeable, वे सफल नहीं होते, किन्तु हम Personal Godhead के उपासक हैं। हम Impersonality के उपासक नहीं हैं। ऐसे भगवान के शरणागत हमारी सफलता अनिवार्य है। सविशेष विष्णुवस्तु के उपासक लोग विषयविग्रह ब्रजेन्द्रनन्दन को धारण कर सकते हैं—**'सद्यो हृद्यवरुध्यते'** श्रीमद्भागवत का यह श्लोक ही इसका प्रमाण है। वे स्वयं भक्तिधर्म का आचरण कर जीवों को सिखाते हैं। वे ही इसका अनुभव कर सकते हैं। **आचार्यवान् पुरुषो वेद**—यह उपनिषद मन्त्र इसी का गान कर रहा है। विषयविग्रह श्रीकृष्ण एवं आश्रयविग्रह मेरे श्रीगुरुपादपद्म—इन दोनों के आश्रय में एवं इनके आशीर्वाद से असंख्य विपदाओं के मस्तक पर पैर रखकर चलें तो हम अवश्य ही सफल हो सकेंगे। श्रीगुरुपादपद्म के आश्रित सेवक लोग कभी भी विफल मनोरथ नहीं हो सकते।

अभक्त सम्प्रदाय अवश्य ही काल के प्रभाव से पतित हो जाते हैं, किन्तु भगवान के भक्तों का कभी भी पतन नहीं हो सकता। अभक्तलोग ही पतित होते हैं और जहाँ पर कपटभक्ति होती है, वे सब ढोंगियों का दल भी पतित हो जाता है। इसके अतिरिक्त मनोधर्मी (Mental Speculationists) भी पतित हो जाते हैं।

प्रश्न 382—हमें कृष्ण का दर्शन क्यों नहीं हो रहा है?

उत्तर—गुरुपादपद्म का दर्शन न होने से कृष्णदर्शन या कृष्णसेवा नहीं हो सकती। गुरु के मुख से उत्तम रूप में हरिकथा श्रवण नहीं करने के कारण हमें कृष्ण का दर्शन

नहीं हो रहा है। श्रवण ठीक होने से कीर्तन भी ठीक होगा, कीर्तन ठीक होने से अच्छी प्रकार से स्मरण या कृष्ण की स्फूर्ति होगी। हमें गुरु के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण करना होगा। क्योंकि कृष्ण ही आश्रयविग्रह होकर सौभाग्यवान् जीवों के निकट गुरुरूप में प्रकट होते हैं। इसलिए हमें सर्वप्रथम गुरु के चरणकमलों का आश्रय ग्रहण करना होगा। अर्थात् सर्वप्रथम हमें लघु होना होगा। इसका नाम ही आश्रय है। आश्रय तो ग्रहण करना ही होगा। किन्तु यदि मैं आश्रय ग्रहण न करूँ तो क्या होगा? भगवान की इच्छा से ही सद्गुरु की प्राप्ति होती है। भगवान की दया पाने से ही सब हो जायेगा। उनकी दया न होने पर सैकड़ों चेष्टाएँ करने पर भी कुछ नहीं होगा। उनकी दया ही मुख्य वस्तु है। यदि हृदय में निष्कपट आर्ति हो, यदि हम वास्तव में केवल उन्हें ही चाहें, तो निश्चित ही हमें उनकी दया प्राप्त होगी। भाग्यक्रम से ही सद्गुरु की प्राप्ति होने पर, वे किस प्रकार से समस्त इन्द्रियों से कृष्ण की सेवा करते हैं, यह देखना होगा, तभी हमारे लिए सुविधा होगी। श्रीगुरुदेव के मुख से उपदेश श्रवण करने पर भी यदि जीव उन उपदेशों का अपने जीवन में यथायथ पालन न करे तो वह विषय-भोग के अतिरिक्त और क्या करेगा? जागतिक विषयों में अधिक आसक्त हो जाने पर श्रवण नहीं होगा और श्रवण उत्तम रूप से न होने पर मंगल भी नहीं होगा।

प्रश्न 383—क्या गुरुदर्शन होने के बाद भी लघुदर्शन रहता है?

उत्तर—कभी नहीं। गुरु या श्रेष्ठ अभिमान हो जाय तो फिर गुरुदर्शन नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में लघु होने पर भी जीव की गुरु होने की इच्छा हो जायेगी। उसके फल से गुरुदर्शन के बदले योषित् दर्शन या भोग्यदर्शन प्रबल हो जाने के कारण जीव का सर्वनाश हो जायेगा।

गुरुदर्शन होने पर सर्वत्र ही गुरुदर्शन होगा, उस समय और लघुदर्शन नहीं रहेगा। जिस प्रकार आँखों में नीला

चश्मा लगाने से सब कुछ नीला ही दिखाई देता है, ठीक उसी प्रकार गुरुदर्शन, दिव्यज्ञान हो जाने पर सभी के प्रति पूज्यबुद्धि, गुरुबुद्धि या गुरुज्ञान होगा। यह जगत् जगदीश की सेवा का उपकरण या जगदीश का सेवक है। अतः मेरे लिए यह जगत् गुरु या पूज्य है। गुरुदर्शन प्रबल होने पर कृष्णदर्शन सहज ही हो जायेगा।

पिता की भोग्या जननी जैसे मेरे लिए सेव्य होती है, उसी प्रकार जगत्पिता जगदीश्वर का भोग्य या सेवक यह जगत मेरे लिए पूज्य, सेव्य अर्थात् गुरु है।

यदि कोई वास्तव में गुरुपदाश्रय करता है, और प्रीतिपूर्वक गुरुसेवा करता है, तो वह निश्चितरूप में कृष्णसेवा या कृष्ण के विषय में दिव्यज्ञान या दीक्षा प्राप्त करेगा।

जिस कार्य को करने से विषयी एवं योषित् (स्त्री) को और न देखना पड़े, ऐसा ही कार्य करना होगा। तब कृष्णयोषित् के प्रति परमपूज्या गुरुज्ञान किया जा सकता है। तब 'मैं योषित् का भोक्ता हूँ' ऐसी दृष्टि दूर होने पर भगवान् के प्रति सेवावृत्ति उदित होगी। तभी कृष्ण का सम्पूर्णरूप से दर्शन होगा तथा तभी मैं योषित् का पति हूँ, ऐसा विचार पूर्णरूप से दूर हो जायेगा। गुरुपादपद्म का दर्शन करने के बाद भी यदि फिर से योषित् का दर्शन हो, तो समझ लेना चाहिए कि पतन हो गया। तभी गुरु सजने की दुर्बुद्धि हो जायेगी एवं साधक का सर्वनाश हो जायेगा। इसीलिए कहता हूँ कि जो अपना मंगल चाहते हैं, वे दृढभाव से श्रीकृष्ण के पादपद्मों का आश्रय ग्रहण करें एवं प्राण देकर गुरुसेवा करें तो उनका मंगल अवश्य ही होगा। गुरुनिष्ठ भक्त का कभी भी पतन नहीं होता। गुरुनिष्ठ भक्त कृष्ण के पादपद्मों में पहुँचेंगे ही।

प्रश्न 384—गृहस्थ का क्या कर्तव्य है?

उत्तर—गृहस्थ भक्त लोग भगवान के सुख के लिए ही साधु-गुरुओं का संग एवं उनकी सेवा, आदर और प्रीतिपूर्वक करेंगे। तभी पारमार्थिक गृहस्थ होने की योग्यता प्राप्त होगी। गृहस्थ भक्त यदि भक्त-भागवत एवं ग्रन्थ-

भागवत—इन दोनों भागवतों की सेवा, संग या आलोचना न करें, तो उनका मंगल हो ही नहीं सकता। मैं सम्पूर्णरूप से कृष्णसेवा करूँगा ऐसा संकल्प लेकर घर में रहना ही मंगलजनक है, अन्यथा हरिसेवा विहीन गृह तो नरक का द्वार स्वरूप है। हरिभजन के अनुकूल संसार होने पर ही गृहस्थ आश्रम ग्रहणीय एवं प्रशंसनीय है और यदि प्रतिकूल संसार हो, तो गृह अन्धकूप के समान परित्यज्य है। सेवापरायण पारमार्थिक व्यक्ति के गृहवास एवं मठवास में कोई भेद नहीं है। किन्तु गृह के प्रति आसक्त या गृहव्रती का गृहवास तथा कृष्णभक्तों का गृहवास—इन दोनों प्रकार के गृहवासों को एक नहीं किया जा सकता। जिन्होंने गुरु-कृष्ण को ही अपना जीवन बनाया है, ऐसे शुद्धभक्तों का संग तथा उनकी सेवा के फल से ही गृहासक्ति या गृहव्रतधर्म नष्ट हो सकता है। निष्कपटरूप से गुरुसेवा के अतिरिक्त गृहासक्ति के हाथ से मुक्ति पाने का और कोई उपाय नहीं है। गुरु के आनुगत्य में कृष्णसेवा करने के लिए ही गृह में रहना होगा। अत्याहार, प्रयास, प्रजल्प, नियमाग्रह, जनसंग तथा लौल्य से पारमार्थिक गण सर्वदा दूर ही रहेंगे। गृहस्थ के भजन में उत्साह, दृढ़ता, निश्चयता, धैर्य, हरिकथा-श्रवण-कीर्तन में रुचि या यत्न एवं गुरुकृष्ण की सेवा में निष्ठा अवश्य ही रहेगी।

अवैध स्त्रीसंग, अपनी स्त्री के प्रति अत्यन्त आसक्ति या स्त्रैणभाव और दुःसंग त्याग करना एवं वाक्य, मन, क्रोध जिह्वा, उदर एवं उपस्थ के वेग को दूर करना पारमार्थिक गृहस्थ का कर्तव्य है।

गृहस्थभक्त पाप कार्य तो करेंगे ही नहीं, यहाँ तक कि भक्तिबाधक पुण्यकर्मों से भी सावधान रहेंगे। क्योंकि पापकार्य करेंगे, तो हरिभजन नहीं होगा और यदि पुण्यसंग्रह करने की इच्छा हुई, तो भी हरिभजन नहीं होगा। इसका ध्यान रखना चाहिए कि गृहस्थभक्त कहीं नाम-भजन का अभिनय दिखाकर हरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा से उदासीन न हो जाएँ। क्योंकि गृहस्थभक्त के लिए यह शठता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ऐसा करने से वे क्रमशः संसार में ही आसक्त हो जायेंगे। गुरु-कृष्ण की सेवा न

करने पर जीवों की भगवान के प्रति प्रीति नहीं हो सकती। जो सबकुछ त्यागकर सब समय सम्पूर्णरूप से कृष्ण की सेवा में नियुक्त हैं, उनकी भगवान की सेवा में सहायता करने के लिए गृहस्थ भक्त सदैव ही चेष्टा करते रहेंगे।

प्रश्न 385—क्या मठ बनाकर रहना ही हमारा कार्य है?

उत्तर—स्वयं मठ बनाकर आराम से रहने के लिए चेष्टा न कर जीवन्त मठ बनाने के लिए प्रयत्न करना ही बुद्धिमत्ता है। यदि किसी एक श्रद्धालु व्यक्ति को श्रीगुरुदेव के चरणकमलों में आकर्षित किया जा सके, तभी जीवन्त मठ बनाया जा सकता है। गुरु की महिमा और गुरु की सेवा की बात कहकर जीवों को गुरुपादपद्म में आकर्षित करना ही सबसे बड़ा मंगलजनक कार्य है। इसलिए जीवों के कल्याण के लिए गैलन-गैलन रक्त खर्च करने पर गुरु एवं कृष्ण अवश्य ही प्रसन्न होंगे। अतः तन-मन-वचन से ऐसे जगत मंगलजनक कार्य के व्रती होना ही बुद्धिमत्ता है। इसी में जीवन की सार्थकता भी है।

हरिकीर्तन से गुञ्जित हरिसेवामय मठ साक्षात् वैकुण्ठ है। इसलिए मठवास ही धामवास है। मठ में हरिकथाओं की आलोचना प्रबल होनी चाहिए। केवल खाने रहने के लिए ही मठ करने से कोई लाभ नहीं है। हरिकथाओं का प्रचार करने के लिए ही मठ करने की आवश्यकता है। इसी से अपना एवं दूसरों का मंगल होगा।

गुरुनिष्ठ भक्त ही जीवन्त साधु या Living source हैं। ऐसे जीवन्त साधुओं के पास ही हरिकथा सुननी होगी। तभी हम गुरुदेवतात्मा हो सकते हैं।

गुरुनिष्ठाहीन या गुरुसेवा से वञ्चित व्यक्ति जीवन्मृत (जीते जी मरा) हैं। ऐसे अवैष्णव का संग नहीं करना ही उचित है। इससे हमारा अमंगल ही होगा।

प्रश्न 386—क्या गुरुकृपा ही भगवान की कृपा प्राप्ति का उपाय है?

उत्तर—श्रीगुरुनित्यानन्द की कृपा से ही हम लोग

कृष्णनाम, कृष्णमन्त्र और नित्यमंगल का उपदेश प्राप्त कर सकते हैं। श्रीगुरुनित्यानन्द की कृपा के बिना श्रीगौरचन्द्र और श्रीराधागोविन्द की कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। हमारे पूर्व गुरु श्रीनरोत्तम ठाकुर ने ऐसा लिखा है। श्रीगुरुदेव की कृपा से ही जीव के संसारबन्धन का नाश होता है और उसे प्रेम सम्पत्ति प्राप्त होती है।

भजनशिक्षादाता नित्यानन्द से अभिन्न श्रीगुरुपादपद्म श्रीगौरांगदेव के अन्तरंग निजजन हैं। ऐसे नित्यानन्द की सेवा आदर एवं प्रीतिपूर्वक करने पर सर्वार्थसिद्धि हो जाती है।

जिनका हृदय जड़ आसक्तियों से कठोर हो गया है, वे अघदमन श्रीकृष्ण का नाम शुद्धरूप से नहीं ले सकते। किन्तु यदि हम सचमुच ही श्रीगुरुमुख से हरिनाम श्रवण करें, तो नामप्रभु हमें निश्चय ही पागल कर देंगे। श्रीगुरुदेव मेरे दैन्य एवं आर्ति को देखकर मुझ पर अवश्य ही अकपट कृपा करेंगे, तभी मेरे मुख से श्रीहरिकीर्तन प्रबलवेग से बाहर निकलेगा।

प्रश्न 387—प्रभो, क्या आप गुण्डिचा (मन्दिर) जायेंगे?

उत्तर—गुण्डिचा मनुष्य का हृदय है। चित्त दर्पण परिमार्जित होने पर ही वह भगवान का वसतिस्थल होता है। आपके विचारों के गुण्डिचा में मेरी जाने की इच्छा नहीं है। क्योंकि मैं अभी तक अपना हृदय मन्दिर मार्जन नहीं कर सका। मेरा पुरुष अभिमान और प्रभुत्व अभिमान प्रबल हो गया है, जिससे मैं हताश हो गया हूँ। मेरा आशाबन्ध कम हो गया है। मुझे Insincere लोगों का संग ही अच्छा लगता है, इसलिए ऐसे लोगों से ही मेरा मिलन होता है। I have no intention to come in contact with Sri Rupa and Sri Sanatan. मैं आदर पूर्वक अपनी विपत्ति को स्वयं ही बुलाता हूँ। इस प्रकार यह देह रहने तक हम असुविधाओं के सागर में ही डूबे रहेंगे। इसलिए हम अनेक समय सोचते हैं कि Let us be metamorphosed into Charvakism. Discomforts (असुविधाएँ) भगवान की कृपा है, इसे हम नहीं समझ पाते। इसीलिए हमारी घर जाने की

इच्छा होती है। श्रीकृष्ण के चरणकमल ही हमारा नित्यघर है। कृष्ण चरणकमलों में ही eternal health of the soul अवस्थित है।

प्रश्न 388—हमारा मंगल कैसे होगा?

उत्तर—विषय पिपासा या पाप प्रवृत्ति को आदरपूर्वक ग्रहण नहीं करना चाहिए। पाप आचरण तो दूर की बात, यहाँ तक कि नैतिक पुण्यमय आचरणों को भी त्यागकर भगवान के शरणागत होकर हरिभजन करने पर मंगल हमारे हाथ में होगा। जगाइ–माधाइ ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणकमलों का आश्रय ग्रहण करने के बाद पुनः पाप नहीं किये। हरिभजन ही परम प्रयोजन है—ऐसे विचारयुक्त व्यक्ति ही दूसरे व्यक्तियों की दुर्गति को समझ सकते हैं।

हरिभजन करने पर नित्यजीवन प्राप्त होता है। जो हरिभजन करते हैं, वे मरते नहीं हैं। भक्तों के काम, क्रोध आदि शत्रु नहीं रहते। बहिर्मुख जीव रूप–रस–शब्द–गन्ध–स्पर्श आदि के लिए ही लालायित रहते हैं। हरिभजन में प्रवृत्ति रहने पर इन्द्रियों को बलपूर्वक दमन करने की चेष्टा नहीं करनी पड़ती। क्योंकि निष्कपटरूप से हरिभजन आरम्भ होने पर भगवान की कृपा से इन्द्रियों के विषदाँत टूट जाते हैं। मायाबद्ध अतिवृद्ध व्यक्ति का भी विषयों से मोह होता है। किन्तु हरिभजनकारी व्यक्ति के लिए **"विश्वं पूर्णसुखायते"** अर्थात् वे जगत को दुःखपूर्ण नहीं देखते तथा उनके लिए **"विधि महेन्द्रादिश्च कीटायते"** अर्थात् हरिभक्त इन्द्र होना तो बहुत दूर की बात है, वे चतुर्मुख ब्रह्मा भी होना नहीं चाहते। इस जगत में कोई भी कीट होना नहीं चाहता, किन्तु हरिभजन होने पर कीट होकर रहना भी अच्छा है। श्रीचैतन्यदेव के भक्तों की कृपा होने पर देवताओं का भी मंगल हो जाता है।

स्वरूपसिद्धि ही आवश्यक है। नहीं तो मृत्यु के समय जागतिक वस्तुओं का चिन्तन करने पर पुनः संसार में आना होगा। भगवान के भक्तों का संग न होने पर हम लोग एक संकीर्ण सम्प्रदाय या दल कर बैठते हैं।

Individually, adjustment with the Absolute

Person must be sought after.

प्रश्न 389—कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड क्या है?

उत्तर—किये गये कर्मों का फल मैं ही पाऊँगा—यही कर्मकाण्ड है तथा कर्म का फल मैं नहीं पाऊँगा तथा ईश्वर भी नहीं पायेंगे—यही ज्ञानकाण्ड है।

प्रश्न 390—भाग्य क्या है?

उत्तर—अनन्तकाल से ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते-करते किसी जीव का संसार क्षयोन्मुख होने पर उस जीव की भक्ति के प्रति अल्पमात्रा में जो रुचि होती है, वही भाग्य है।

प्रश्न 391—कर्मी, ज्ञानी तथा भक्तों के विचार कैसे होते हैं?

उत्तर—कर्मी भोगी होते हैं। ज्ञानी त्यागी या प्रच्छन्न-भोगी होते हैं तथा भक्त भगवान के सेवक होते हैं।

शुष्कज्ञानियों की विचारधारा होती है—मैं ब्रह्म के साथ मिलकर एक हो जाऊँगा, भोग सामग्री जगत को दे जाऊँगा। निर्विशेषवादी ज्ञानियों की चेष्टा सर्वदा ही भगवद् भक्तों, भगवद् भक्ति तथा भगवान के ऊपर आक्रमण करने की ही होती है। ऐसे निर्विशेषवादियों का विचार होता है कि काशी में रहकर जुआ खेलें या कुछ भी करें, मरने पर अवश्य ही हम शिव हो जायेंगे।

कुकर्मियों की विचारधारा होती है—दूसरों को कष्ट देकर केवल हमलोग ही भोग करेंगे। सत्कर्मियों की विचारधारा होती है—पुण्य संग्रह के लिए हमलोग दान, ध्यान, पुण्य और साधुसेवा करेंगे। तथा अपने वंशधर एवं कुटुम्बियों के लिए धन सञ्चय कर जायेंगे। किन्तु भगवान के भक्तों का विचार होता है—जो हरिभजन कर रहे हैं या भविष्य में हरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा करेंगे, उनके लिए अर्थादि सञ्चय करेंगे। हरिभजन या हरिसेवा में ही सब धन खर्च हो, यही शुद्धभक्तों की विचारधारा है।

प्रश्न 392—सर्वश्रेष्ठ उपकार क्या है?

उत्तर—कृष्ण में मति हो ऐसी शुभाकांक्षा या आशीर्वाद जगत के लिए मंगलजनक है। जीव की कृष्ण के प्रति मति लगाना ही सर्वश्रेष्ठ उपकार है।

सबको कृष्ण भक्ति दान करना ही सर्वश्रेष्ठ दान या सबसे बड़ा altruism है।

भक्तों का चित्त सर्वदा ही ऐसे परोपकार के लिए व्यग्र रहता है। भगवान को जानना ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। शास्त्र कहते हैं—**विद्या भागवतावधि।**

प्रभु कहे—कोन विद्या विद्यामध्ये सार?
राय कहे—कृष्ण भक्ति बिना विद्या नाहि आर॥

(चैतन्य चरितामृत)

वर्तमान समय में जो Godless education (निरीश्वर शिक्षा) प्रचारित एवं प्रसारित हो रही है, उसके द्वारा जगतवासियों का किसी प्रकार कल्याण नहीं हो रहा है, बल्कि अकल्याण ही हो रहा है और भविष्यमें भी अकल्याण ही होगा।

श्रीचैतन्यदेव की दया वितरित करने पर ही मनुष्य जाति का सर्वश्रेष्ठ उपकार होगा।

प्रश्न 393—परिकर–वैशिष्ट्य किसे कहते हैं?

उत्तर—कृष्णचन्द्र के नित्यसिद्ध पार्षद भक्तवृन्द को ही परिकर वैशिष्ट्य, विशिष्ट परिकर या मुख्य परिकर कहते हैं। जो सम्पूर्णरूप से प्रभु का मनोऽभीष्ट पूर्ण करते हैं, वे ही मुख्य परिकर हैं। जो जड़ जगत में रहकर भी श्रीगौरसुन्दर के पादपद्मों का आश्रय ग्रहणकर साधन करते-करते कृष्णभजन में अग्रसर होते हैं, वे गौण परिकर होते हैं। वे भी स्वरूपसिद्धि के बाद वस्तुसिद्धि में साक्षात् परिकर या मुख्य परिकरों के अन्तर्गत आ जाते हैं।

प्रश्न 394—भगवान् श्रीगुरुगोविन्द क्या निग्रह भी करते हैं?

उत्तर—अधोक्षज वस्तु श्रीगुरुगोविन्द हमारे नित्य प्रभु हैं। प्रभु शब्द का अर्थ हैं जो हमें निग्रह एवं अनुग्रह करने

में समर्थ हैं। '**कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः ईश्वरः।**' प्रभु केवल अनुग्रह ही करते हैं निग्रह नहीं करते, ऐसी बात नहीं है। वे निग्रह भी कर सकते हैं। जो भगवान् से विमुख हैं, वे दाम्भिक हैं। ऐसे लोगों पर निग्रहकर उनका संशोधन करने के लिए ही भगवान् का अवतार होता है। परन्तु अनुग्रह एवं निग्रह दोनों ही दयामय की दया है। परन्तु उनमें से एक (निग्रह) गौण दया है और दूसरी मुख्य दया है।

बद्ध, विमुख, धृष्ट जीव भगवान के निग्रह के योग्य हैं और कृष्णोन्मुख जीव भगवान के अनुग्रह के पात्र हैं। सरल-चित्त दीन-हीन साधक भक्तों का चित्त दुर्बल होने पर भी वे भगवान के अनुग्रह के पात्र हैं, किन्तु कुटिल चित्तवाले अहंकारी व्यक्ति कपटी होने के कारण निग्रह के योग्य हैं।

इस जड़ जगत में नित्यत्व एवं नित्य आनन्द का अभाव है। यहाँ पर केवल अमंगल एवं निरानन्द ही है। यहाँ पर देखा जाता है कि अभी आकाश साफ है, अगले ही क्षण मेघों से ढक जाता है। तत्पश्चात् वर्षा, आँधी-तुफान आदि होने लगता है। किन्तु वैकुण्ठ में ऐसे निग्रह का कोई भी कार्य नहीं है, वहाँ पर केवल नित्य एवं पूर्ण आनन्द विराजमान है।

प्रश्न 395—हम संसार से कैसे बच सकते हैं?

उत्तर—वर्तमान समय में हमलोग विपत्ति में पड़े हुए हैं। बद्धावस्था में हम २४ घण्टे केवल अपने अभावों को दूर करने तथा इन्द्रियतर्पण की चेष्टा में ही व्यस्त हैं। जड़ इन्द्रियों के द्वारा अपने सुख की प्राप्ति के लिए जो चेष्टा होती है, उसका परिणाम केवल मृत्यु ही है। इस संसाररूप मृत्यु से बचकर हरिभजन करने के लिए श्रीगुरुपादपद्म का आश्रय करना ही सबका कर्त्तव्य है। गुरुपदाश्रय करके दीक्षा आदि ग्रहणरूप कार्य ही भक्तिराज्य में प्रवेश का द्वार हैं। हमें महाजनों का अनुसरण करते हुए भक्तिराज्य में अग्रसर होना होगा। जिस प्रकार बलिराजा ने सर्वस्व समर्पण कर भगवान की सेवा की थी, उसी प्रकार उनका अनुसरण

करते हुए हमें भी श्रीगुरुगौरांग के पादपद्मों में सर्वस्व समर्पण कर नित्यकाल शरणागत होना होगा। शरणागत होकर आदर एवं प्रीतिपूर्वक गुरुसेवा तथा नामसेवा करने पर ही संसार से हमारा उद्धार हो सकता है।

इसीलिए श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है—

ताते कृष्ण भजे, कर गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे, पाय कृष्णेर चरण॥
प्रभु कहे—वैष्णवसेवा, नामसंकीर्तन।
दुइ कर, शीघ्र पाबे श्रीकृष्णचरण॥
साधु-शास्त्रकृपाय यदि कृष्णोन्मुख हय।
सेइ जीव निस्तरे, माया ताहारे छाड़य॥

अर्थात् गुरुसेवा करते हुए कृष्ण का भजन करने पर मायाजाल छूट जाता है तथा कृष्ण के चरणों की प्राप्ति होती है। प्रभु बोले—वैष्णवसेवा और नाम संकीर्तन करो। ऐसा करने पर तुम शीघ्र ही श्रीकृष्ण के श्रीचरणकमलों प्राप्त कर लोगे। साधु एवं शास्त्रों की कृपा से यदि जीव कृष्णोन्मुख होता है, तो उसका उद्धार हो जाता है, माया उसे छोड़ देती है।

प्रश्न 396—किस विषय में चेष्टा करनी होगी?

उत्तर—हम कहते हैं कि सब समय हरिकथा सुनो। साधुसंग में रहकर विषयोन्मुख चित्त को कृष्णोन्मुख करो, तभी मंगल होगा।

भाग्य में जो है, वह अपने आप होगा। इसके लिए अलग से चेष्टा करने की आवश्यकता नहीं है। यदि हमें अलग से चेष्टा करनी ही है तो हरिभजन के लिए करनी होगी।

जो व्यक्ति हमें विषयसुख प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है, विषयी होने के कारण हम भी उसी शत्रु को अपना बन्धु मानते हैं। किन्तु जो विषयसुख के लिए हमें निषेध करता है, जो संसार करने या संसार में आसक्त होने से हमें निषेध करता है, ऐसे निःस्वार्थ बन्धु साधु-गुरु की बात हम लोग नहीं सुनते। इस प्रकार हम अपने असली बन्धु को ही अपना शत्रु मानते हैं। ऐसा

हमारा दुर्भाग्य है!

प्रश्न 397—आपलोग मठ में लीलाकीर्तन क्यों नहीं करते?

उत्तर—श्रीकृष्णलीलाओं का श्रवण-कीर्तन करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। श्रीहरि की लीलाओं का ही श्रवण-कीर्तन करना होगा, तभी बद्धजीवों के कर्मवीरत्व की कहानी या ग्राम्यकथाओं के श्रवणकीर्तन में स्वाभाविक रुचि या आग्रह दूर होगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

लीलाकीर्तन तथा श्रृंगाररस के कीर्तन में वैशिष्ट्य हैं। अनर्थयुक्त जीव गौरलीला या कृष्ण की बाल्यलीलाओं का कीर्तन या श्रवण कर सकते हैं। किन्तु ऐसा न कर श्रीराधाकृष्ण की गूढ़लीलाओं को सुनने और कीर्तन करने से कल्याण के बदले अकल्याण ही होगा।

कीर्तन एकमात्र श्रीगुरुदेव के मुख से ही सुनना चाहिए। वास्तविक भक्त का विचार होता है कि मैं केवल श्रीगुरु-मुखनिःसृत हरिकथा एवं श्रीशुकमुख-विगलित श्रीभागवत की कथा ही श्रवण-कीर्तन करूँगा। मैं गुरु के मुख से या गुरुनिष्ठ शुद्ध मुख से ही गौरविहित कीर्तन या कृष्ण-नाम-रूप-गुण-लीलाओं का ही कीर्तन एवं श्रवण करूँगा। इसके अतिरिक्त किसी से भी श्रवण नहीं करूँगा।

अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति से ही कीर्तन एवं श्रवण करना होगा। उनके अतिरिक्त अन्य लोगों से श्रवण करने पर भी मंगल नहीं होगा।

श्रीराधागोविन्द की गूढ़लीलाओं का श्रवण एवं कीर्तन दोनों ही प्रधान उपासना या नित्य भजन है। यह भजनलीला सर्वसाधारण के सामने गान करना अनुचित तथा अपराध है। **'आपन भजन कथा ना कहिबे यथा तथा'**—आचार्यों के इस वाक्य का प्रत्येक मंगलाकांक्षी व्यक्ति के लिए पालन करना कर्तव्य है। जहाँ पर पाँचमिशाली लोग उपस्थित रहते हैं, वहाँ पर नाम तथा प्रार्थना एवं दास्यरस के कीर्तन करना ही उचित है। जहाँ पर केवल रसिक भक्त ही उपस्थित हैं, वहीं पर यदि अधिकार हो तो रसकीर्तन करना चाहिए तथा

रसकीर्तन श्रवण के समय अपने अपने स्वरूपोचित भजनभाव का अनुभव करना चाहिए। अन्यथा हित के स्थान पर अहित ही होगा। ऐसा करने पर यदि लीलाकीर्तन-पद्धति उठ भी जाय तो उठने दो। इससे भी लोगों का उद्धार ही होगा। अर्थ की लालसा तथा इन्द्रियसुख प्राप्ति की आशा से जहाँ तहाँ रसगान होने देना तो नितान्त कलि का कार्य है।

प्रश्न 398—जड़ जगत के साथ परजगत का क्या पार्थक्य है?

उत्तर—यह जड़ जगत उस अप्राकृत नित्य जगत का हेय और असम्पूर्ण प्रतिबिम्ब हैं। इस जगत की विचित्रता में अनित्य, खण्ड तथा हेय धर्म है। क्योंकि इस जगत की विचित्रता उस नित्य जगत की विचित्रता की प्रतिच्छवि है। वहाँ पर अप्राकृत पात्र, अप्राकृत स्थान एवं अप्राकृत या अखण्डकाल का नित्य वास्तव अधिष्ठान है। वहाँ पर विषयवस्तु का अद्वितीयत्व, किन्तु आश्रयवस्तु का बहुत्व होने के कारण ऐक्यतान का अभाव नहीं है। विषय के बहुत्व स्वीकार में ही दोष है, विषय की शक्ति की विचित्रता स्वीकार करने पर किसी प्रकार के दोष की सम्भावना नहीं हो सकती।

प्रश्न 399—कर्मफल भी क्या भगवान की कृपा है?

उत्तर—बुद्धिमान व्यक्ति अपने कर्मफल को भगवान की अनुकम्पा मानकर उनका भोग करते करते तन-मन-वचन से भगवान में आत्मसमर्पणपूर्वक जीवन धारण करते हैं। कितनी ही बड़ी विपत्ति क्यों न हो, उसे वे अपना कर्मफल मानकर ग्रहण करते हैं। इसके लिए वे भगवान को दोषारोप नहीं करते, बल्कि उनकी कृपा मानकर मस्तक पर धारण करते हैं। इस प्रकार उनकी भगवान में और भी अधिक प्रीति बढ़ जाती है। यही भागवतीय शिक्षा है।

प्रश्न 400—अप्राकृत-तत्व की उपलब्धि कैसे होगी?

उत्तर—अप्राकृत विषय कभी भी प्राकृत ज्ञान-बुद्धि-विचार के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करते। अर्थात् अप्राकृत

विषय कभी भी अप्राकृत ज्ञान-बुद्धिविचारों के द्वारा प्रकाशित नहीं हो सकते। जो अप्राकृत विषय के सामने सम्पूर्णरूप से आत्मसमर्पणकर अप्राकृत तत्त्व में प्रविष्ट हो गये हैं, एकमात्र उनके सामने आत्मसमर्पण करने पर ही अप्राकृत तत्त्व के वास्तव स्वरूप की उपलब्धि हो सकती है। इसलिए श्रुतियों ने कहा है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

{अर्थात् उन भगवद् वस्तु का विज्ञान (प्रेमभक्तिसहित ज्ञान) प्राप्त करने के लिए वे यज्ञीय समिध हाथ में लिये हुए वेदतात्पर्यज्ञ और कृष्णतत्त्वविद् सद्गुरु के पास कायमनोवाक्य के साथ पूर्ण समर्पित भाव से जायेंगे।} गीता में भी कहा है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥

अर्थात् ज्ञान के उपदेश देनेवाले गुरु के निकट दण्डवत् प्रणाम द्वारा, संगत प्रश्न द्वारा और सेवा द्वारा उस ज्ञान को समझो। तत्त्वदर्शी ज्ञानीगण तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश देंगे।

अप्राकृत तत्त्व, अधोक्षज वस्तु या वास्तवसत्य—सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ स्वराट वस्तु की सभी बुद्धिमान व्यक्ति ही सेवा करने के लिए स्वाभाविकरूप से ही उन्मुख रहते हैं। जो इसमें विमुखता दिखाते हैं, वे ही इस कारागारस्वरूप जगत में गिरकर दुःख पाते हैं।

करुणामय वास्तव सत्य पतित व्यक्तियों के उद्धार के लिए उनके विकृत विचारों को परिवर्तित करने के लिए अपने महामुक्त प्रतिनिधियों को इस जगत में भेज देते हैं।

प्रश्न 401—हम किसके अनुगत होंगे?

उत्तर—कृष्ण के इन्द्रियतर्पण में विघ्नकारी किसी भी व्यक्ति का कृष्णराज्य में प्रवेश का अधिकार नहीं है। इसलिए हम कभी भी ऐसे लोगों का आनुगत्य नहीं करेंगे। हम किसी को भी अपने ऊपर प्रभुत्व नहीं करने देंगे। एकमात्र विष्णु एवं उनके सेवकवर्ग ही हमारे ऊपर

सम्पूर्णरूप से अपना प्रभुत्व करेंगे। यदि हम उदारता के नाम पर विष्णु एवं वैष्णवों के अतिरिक्त दूसरे किसी व्यक्ति को अपने ऊपर शासन करने दें या गुरु-कृष्ण के साथ दूसरे किसी की समानता करेंगे, तो हमें समझ लेना चाहिए कि निश्चय ही माया ने हमारे ऊपर अपना प्रभुत्व जमा लिया है। हम तथाकथित मुक्ति को पैरों की ठोकर से दूर करेंगे। सायुज्य मुक्ति तो अपराध की पराकाष्ठा है। मायावादी अपराधी होते हैं। अतः वे कदापि कृष्णनाम उच्चारण नहीं कर सकते। वह कृष्णनाम उच्चारण का जो अभिनय करते हैं, उससे कृष्ण के अंग बिंध जाते हैं। हम कुतर्क को ही अपना गन्तव्य विचार नहीं करेंगे। हम तर्क के द्वारा अपने वचनों का उपसंहार नहीं करेंगे। तर्क के द्वारा कभी भी तर्कातीत वस्तु की उपलब्धि नहीं हो सकती। इसलिए श्रीहरि की कथाओं को जानने के लिए तर्क को छोड़कर उनके भक्तों के अनुगत होना अति आवश्यक है। हम सर्वदा समस्त अवस्थाओं में समस्त इन्द्रियों के द्वारा श्रीहरि के दास्य में नियुक्त रहेंगे। हम आध्यक्षिक नहीं होंगे और आध्यक्षिकों का आनुगत्य भी नहीं करेंगे।

प्रश्न 402—आध्यक्षिक किसे कहते हैं?

उत्तर—दो पथ हैं—श्रौतपथ तथा तर्कपथ। श्रौतपथ का नाम अवरोह पन्था है तथा तर्कपन्थ का नाम आरोह पन्था है। श्रौतपथ में कर्ण प्रदान को अधोक्षज सेवा तथा तर्कपथ में इन्द्रिय परिचालना को आध्यक्षिकता कहते हैं। जो अक्ष अर्थात् इन्द्रियों का अवलम्बन किये हुए हैं, जो जागतिक विचार या इन्द्रियज ज्ञान के द्वारा भ्रमित होने पर भी आत्मश्लाघा (अपनी प्रशंसा) की पताका उठा रहे हैं, जो उनके इन्द्रियतर्पण-परता की भूमिका में युक्तिजाल बनाते हैं, वे ही आध्यक्षिक हैं। आरोह प्रणाली ही आध्यक्षिकता है। सूर्य से आयी हुई किरणें जब हमारे नेत्र-गोलकों में पड़ती हैं, तभी हम सूर्य की किरणों की सहायता से सूर्य का दर्शन करते हैं। यह अवरोह प्रणाली में सूर्यदर्शन है। परन्तु जब सूर्य की किरणों की सहायता परित्यागकर स्वाधीनरूप से कृत्रिम आलोक के द्वारा सूर्य दर्शन की चेष्टा करते हैं,

तो उस समय सूर्यदर्शन नहीं होता। यह शेषोक्त प्रणाली ही आध्यक्षिकता या आरोहवाद है। आध्यक्षिकता ही रावण के द्वारा अभिनन्दित प्रणाली है। आध्यक्षिकता में बहिर्मुख लोगों का इन्द्रियतर्पण या समर्थन है। आध्यक्षिक लोग हेतुवादी या प्रच्छन्न तार्किक हैं। आध्यक्षिकता का त्यागकर श्रीकृष्ण के पादपद्मों में निष्कपट भाव से शरण ग्रहण करने पर ही हम गुरु-वैष्णवों की कृपा से कृष्णतत्त्व एवं शुद्धभक्ति की बातें समझ सकते हैं।

प्रश्न 403—क्या ध्यान कृत्रिमभाव से होता है?

उत्तर—कभी नहीं। **'कीर्तन प्रभावे स्मरण हइबे, से काले भजन निर्जन सम्भव'** अर्थात् कीर्तन के प्रभाव से स्वाभाविकरूप से स्मरण होता है, तभी निर्जन भजन सम्भव है। विक्षिप्त चित्त से ध्यान सम्भव नहीं है। कृत्रिम ध्यान का मार्ग तो एक प्रकार से प्रच्छन्न आत्मेन्द्रिय-तर्पण ही है। अप्राकृत वस्तु का कीर्तन के माध्यम से ध्यान स्वाभाविक एवं अकृत्रिम हो सकता है। पूर्ण चेतन के साथ अणुचेतन का पाँच प्रकार का सम्बन्ध है। उन समस्त सम्बन्धों के अभिधेयरूप में शब्दब्रह्म की उपासना से जो स्वाभाविक राग या आकर्षण प्रकाशित होता है, उसी के द्वारा चेतन का सहज ध्यान सम्भव है। उस ध्यान में विक्षेप, आवरण या कृत्रिमता नहीं है। कृष्ण के सेवक सम्प्रदाय का ध्यान ऐसा ही स्वाभाविक होता है।

प्रश्न 404—क्या श्रीचैतन्य चरितामृत लीलाग्रन्थ है?

उत्तर—श्रीचैतन्य चरितामृत केवल श्रीचैतन्यदेव का लीलाग्रन्थ-मात्र नहीं है। बल्कि यह एक अति अद्भुत महादार्शनिक विचारोंवाला ग्रन्थ है। इसमें महाप्रभु की लीलाओं के साथ-साथ दर्शन की भी व्याख्या है। श्रीकृष्ण की द्वितीय लीला ही श्रीचैतन्यलीला है तथा श्रीचैतन्य की द्वितीय लीला ही कृष्णलीला है। श्रीमद्भागवत के पथ का अनुसरण करके ही श्रीकविराज गोस्वामी ने यह ग्रन्थ लिखा है।

प्रश्न 405—तर्कपन्थी कौन हैं?

उत्तर—जो Challenging mood लेकर Absolute Truth पर आक्रमण करते हैं, वे ही तर्कपन्थी हैं। तर्कपन्था —**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया**—इस विचार का विरुद्ध पन्था है। एक पन्था है—हम वास्तव सत्यकीर्तनकारी गुरुदेव से श्रवण करेंगे तथा भगवान के उन्मुख या उनके सम्मुख होने की चेष्टा करेंगे। दूसरा पन्था है—हम अपने इन्द्रियज ज्ञान के बल से अतीन्द्रिय वास्तव सत्य को प्राप्त कर लेंगे। इनमें से प्रथम श्रौतपन्था है तथा दूसरा तर्कपन्था है। अन्वयभाव से जो गृहीत होता है, वे श्रौतपथ तथा जो व्यतिरेक भाव से गृहीत होता है, वह तर्कपथ है। पाँचों दर्शन ही तर्कपथ में प्रतिष्ठित हैं। केवलमात्र वेदान्तदर्शन ने ही श्रौतपथ ग्रहण किया है। शंकराचार्य ने लोगों को मोहित करने के लिए श्रौतपथ के नाम पर वेदान्त दर्शन में तर्कपथ की ही चर्चा की है। आध्यक्षिक ज्ञान के बढ़ जाने पर वह तर्कपथ को प्राप्त हो जाता है।

वैष्णवलोग जितनी भी कथाएँ कहते हैं, अपने द्वारा रचित कल्पित कथाएँ नहीं कहते। वे सम्पूर्णरूप से गुरुपादपद्म को दिखा रहे हैं। अर्थात् वे गुरुमुख से श्रवण की हुई कथाओं को ही कहते हैं। गुरु दस पाँच नहीं होते। **मन्नाथः श्रीजगन्नाथः, मद्गुरु श्रीजगद्‌गुरुः।** Absolute Truth requires no challenge from anybody.

प्रश्न 406—महाप्रभु के समय तो बहुतों ने गुरु का कार्य किया था?

उत्तर—हाँ। वे सब भगवान के पार्षद कृष्णप्रेष्ठ थे। वे परस्पर अभिन्न थे। उन सभी ने कृष्णसेवा की ही बात कही है।

प्रश्न 407—सभी धर्मों में तो वह गुरु हो सकता है?

उत्तर—सब धर्मटर्म छोड़ दो। जिस प्रकार गुरुपादपद्म अद्वितीय हैं, उसी प्रकार धर्म भी एक ही है। उसका नाम है—आत्मधर्म। आत्मधर्म के अतिरिक्त सब देहधर्म या

मनोधर्म हैं। जगत में देहधर्म और मनोधर्म के नाना मत और नाना पथ सुने जाते हैं, किन्तु आत्मधर्म के सम्बन्ध में यह सब नहीं सुना जाता। आत्मधर्म अद्वितीय है, किन्तु उसमें विचित्रताओं का अभाव नहीं है।

वह विचित्रताओं से रहित धर्म नहीं हैं, वह सम्पूर्ण जागतिक आवरण एवं सीमारहित विशुद्ध निर्मल आत्मा की स्वाभाविक स्वच्छन्द वृत्ति है।

प्रश्न 408—हम लोग वास्तव सत्य कैसे जान पायेंगे?

उत्तर—बहिर्मुख व्यक्ति की श्रद्धा, भक्ति तथा रुचि—सभी कुछ बहिर्मुखी होती है। मनुष्य ऐसी श्रद्धा, भक्ति तथा रुचि के माध्यम से कभी भी सत्य वस्तु को नहीं पा सकता। जब वास्तव वस्तु स्वयं ही कृपाकर अवतीर्ण होते हैं, तभी वे स्वयं ही अपने को जना देते हैं। किस वस्तु को प्राप्त करना चाहिए, अकपट सेवोन्मुख व्यक्ति को चैत्यगुरु कृपापूर्वक जना देते हैं। विशुद्ध आम्नायधारा के माध्यम से ही वास्तव सत्य वस्तु प्रवाहित होते हैं।

प्रश्न 409—भगवान को तो कोई कोई निर्विशेष कहते हैं?

उत्तर—वास्तव सत्य वस्तु निर्विशेष नहीं हैं। परमेश्वर तो चिद्विलासी हैं। उनका अप्राकृत रूप, गुण, लीला आदि सभी कुछ है। उनकी initiative लेने की सामर्थ्य है। ईश्वर की स्वतन्त्रता है। वे ज्ञानशक्ति, शक्ति तथा क्रियाशक्ति के परिचालक पूर्णविग्रह हैं। हममें जो Knowing, feeling, willing है, वह उनमें पूर्णमात्रा में है। वे जो Fountain head हैं, इसे भूलने के कारण ही कृष्ण-माया हम पर आक्रमण करेगी, हमारे विचारों में भूल करायेगी, असत् विवेक को ही विवेक कहकर हमें भ्रान्त कर देगी।

विशुद्धसत्त्व में उनका आविर्भाव होता है। कृष्ण जिस पर दया करते हैं, उसी का हृदय विशुद्ध-सत्त्वोज्ज्वल होगा। विशुद्धसत्त्वोज्ज्वल हृदय में जो दर्शन होता है, वह असली दर्शन या असली सच्चिदानन्द अनुभूति है।

प्रश्न 410—प्रचार कौन कर सकते हैं?

उत्तर—जिन्हें अनुभूति हो गयी है, जो भगवान के दर्शन कर चुके हैं, वे ही प्रचारक हो सकते हैं। असंख्य प्रचारक उनके ही अनुगत होकर प्रचार कर सकते हैं। श्रीव्यासदेव ने जब पूर्णपुरुष के दर्शन किये, तभी उनका हृदय शान्त हुआ तथा उन्होंने श्रीमद्भागवत का प्रचार किया। आत्माराम शुकदेव, नवयोगेन्द्र आदि सभी ने परिव्राजक के रूप में आत्मधर्म की बातों का ही प्रचार किया। परममुक्त पुरुषगण ही हरिकथा का प्रचार करते हुए भ्रमण करते रहते हैं। श्रीमहाप्रभु एवं उनके पार्षदों ने सर्वत्र ही हरिकथाओं का प्रचार किया।

हजारों प्रश्न उत्पन्न होंगे, एक हरिकथा अच्छी प्रकार से सुनने पर सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जायेंगे। अधीर होने से कुछ नहीं होगा।

प्रश्न 411—हमलोग किस प्रकार से भगवान के लिए प्रस्तुत हो सकते हैं?

उत्तर—श्रीगुरुपादपद्म की सेवा से ही कृपा प्राप्त होती है एवं गुरु की कृपा प्राप्त करके ही भगवान की प्राप्ति के लिए तैयार हुआ जा सकता है। गुरुसेवा तथा शब्दब्रह्म की सेवा से ही हृदय में बल मिलेगा।

प्रश्न 412—हम सद्गुरु कैसे पायेंगे?

उत्तर—भगवान् हृदय में चैत्यगुरु के रूप में तथा बाहर महान्त गुरु के रूप में विराजमान रहते हैं। यदि हम निष्कपटता से रहेंगे, तो भगवान ही हमें महान्त गुरु से मिलवा देंगे। हम हजार-हजार लोग आवेदन-पत्र लेकर उपस्थित हो सकते हैं, किन्तु मंजूर करने वाले मालिक तो वे ही हैं। वे क्यों नहीं मंजूर करेंगे, हम ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि वे हमारे बागान (बगीचे) के माली नहीं है। हमें तो सहिष्णु होकर उनकी कृपा की अपेक्षा करनी होगी —अन्याभिलाषिताशून्य होकर उनकी सेवा में तत्पर रहना होगा। यदि हम निष्कपट कृपा चाहेंगे, तो वे अवश्य ही

कृपा करेंगे। उनकी कृपा से ही हम सद्‌गुरु पायेंगे।

'कृष्ण यदि कृपा करेन कोन भाग्यवाने,
गुरु–अन्तर्यामी रूपे शिखाय आपने॥'

अर्थात् यदि कृष्ण किसी भाग्यवान् व्यक्ति पर कृपा करते हैं, तो अन्तर्यामी चैत्यगुरु के रूप में स्वयं ही उसे शिक्षा प्रदान करते हैं।

प्रश्न 413—क्या हरिकीर्तन प्रतिक्षण करना चाहिए?

उत्तर—हरिकथाओं का कीर्तन करना ही विश्राम है। इसी से समस्त प्रकार का श्रम या क्लेश दूर हो जाते हैं। कीर्तन छोड़कर एक मुहूर्त्त के लिए भी अन्य कार्यों के लिए चेष्टा करना ही भगवद्–विमुखता है। महाभागवत तथा उनके अनुगत सभी लोग सर्वक्षण अच्छी तरह से हरिकथा कीर्तन करते हैं, उनका अन्य कोई काम नहीं होता। श्रीचैतन्यदेव ने भी आदेश दिया है—**कीर्तनीयः सदा हरिः।**

सभी अवस्थाओं में तन–मन–वचन से भगवान का कीर्तन ही जीवित अवस्था में मुक्ति लक्षण हैं।

प्रश्न 414—हम तो परोपकार को ही धर्म मानते हैं। इस विषय में आपका क्या मत हैं?

उत्तर—परोपकार अच्छी चीज हैं। किन्तु इसमें दो स्थानों पर बहुत बड़ा दोष है। एक तो व्यक्तरूप में इसमें निरीश्वरता का आवाहन है, दूसरा—इसमें पशुजाति या दूसरे प्राणियों के प्रति हिंसा है।

Absolute Integer (चरम पूर्ण वस्तु) neglect (उपेक्षा) करके जो कुछ भी किया जाय, उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। हम परमार्थ को सुविधावाद की सेवा में नियुक्त करने के पक्षपाती नहीं हैं। साधु से जागतिक सेवा करवा लेने की चेष्टा में साधुत्व के प्रति आदर नहीं है। मानव जीवन का कार्य केवल ऐसा सामान्य Altruism (परोपकार) नहीं है। मानव जीवन का और भी एक बहुत बड़ा कार्य है—भगवान की सेवा। भगवान की सेवा के द्वारा ही चिरकाल के लिए दुःख दूर हो जायेंगे तथा चिरकाल के लिए सुखी हुआ जा सकता है। इसीलिए हमारा मनोरथ है

कि हम सारे जगत को कृष्णभक्त करेंगे।

भगवान की सेवा ही चेतन का धर्म—आत्मा का धर्म—नित्यधर्म या परधर्म है। भगवान चैतन्यदेव ने जगत में परमधर्म की कथाओं का ही प्रचार किया है। उसी से जगत का सम्पूर्णरूप से उपकार तथा कल्याण होगा। श्रीचैतन्यदेव ने कहा है—

भारतभूमिते हैल मनुष्य जन्म यार।
जन्म सार्थक करि कर पर-उपकार॥

अर्थात् भारतभूमि में जिसका मनुष्य रूप में जन्म हुआ है, वह भगवान का भजनकर अपने जीवन को सार्थक बनाकर परोपकार करें।

श्रीचैतन्यदेव ने देश एवं जीवों के उपकार की बात ही कही है। किन्तु उनके देश एवं जीव तथाकथित समाज कल्याण प्रार्थी व्यक्तियों की भाँति क्षुद्र, संकीर्ण, अस्थायी, परिवर्तनशील या आकाश-कुसुम के समान काल्पनिक मात्र नहीं हैं। उनके द्वारा कथित उपकार पर अर्थात् श्रेष्ठ है, अपर अर्थात् निकृष्ट या अनित्य नहीं है। मानव जाति ने अपनी क्षुद्र विचारबुद्धि से परोपकार के लिए देश एवं जीवों की उन्नति के लिए जो उपाय किये हैं, कर रहे हैं तथा भविष्य में भी जो असंख्य उपाय करेंगे, उनके द्वारा कभी भी देश एवं जीवों का वास्तविक उपकार या कल्याण नहीं होगा। वे तो सब प्रस्तावित अनित्य उपकार के प्रयास मात्र हैं। महाप्रभु ने वास्तविक पर उपकार की प्रणाली कही है—

वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।

श्रीमद्भागवत की प्रणाली ही चैतन्यदेव के द्वारा आविष्कृत तथा परिष्कृत प्रणाली है। वही प्रणाली कल्याणप्रद और तीनों तापों का नाश करने वाली है। जगत में ऋषि-मुनियों के द्वारा जितनी भी परोपकार की प्रणालियाँ बना दी गयी हैं, उनसे क्षणिक सुख या प्रेयः तो प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु वह आत्मकल्याणकारी या श्रेयोदानकारी नहीं है अर्थात् उससे तीनों तापों का नाश नहीं होता। तापों का मूल कारण क्या है, इसे जानना आवश्यक है। क्योंकि कारण का नाश किये बिना कार्य का नाश सम्भव नहीं है। बटवृक्ष के जड़ को उखाड़े बिना हजारों बार उसकी

शाखाओं को काटने पर भी वह पुनः उग आता है। मनुष्य के द्वारा कल्पित जो हजारों परोपकार की प्रणालियाँ हैं, वे हाथों के द्वारा समुद्र के जल को बाहर फेंककर समुद्र को सुखाने के समान ही है। यदि हजारों लोग युगों–युगों तक ऐसा प्रयास करते रहें, तो भी समुद्र कभी सूखेगा नहीं। हाँ, यह देखा जायेगा कि उस उपाय का अवलम्बन करने पर एक स्थान पर बहुत परिमाण में पानी जमा हो गया है। उसी प्रकार जगत के त्रितापरूप समुद्र मनुष्य के द्वारा कल्पित परोपकार के उपायों के द्वारा कभी सूखेगा नहीं, लोगों को मिथ्या प्रलोभन देना तथा स्वयं मिथ्या प्रलोभन में पड़ना ही होगा।

श्रीमद्भागवत में वर्णित प्रणाली के बिना कभी भी त्रितापों का विनाश नहीं हो सकता। इन तापों की अनन्त विचित्रताएँ हैं, हम कभी भी ऐसे कल्पित उपायों के द्वारा अनन्त तापों में से एक को भी जड़ से नाश नहीं कर सकते। भगवद्विस्मृतिरूपी आवरणात्मिका तथा विक्षेपात्मिका अविद्या ही हमारे समस्त तापों का मूल कारण है। उस कारण के नाश हुए बिना ताप वैचित्र्यरूप कार्य का भी नाश नहीं होगा। भगवान की सेवा का प्रचार किये बिना कभी भी देश का दुःख नष्ट नहीं होगा। भगवान की सेवा की कथाओं का प्रचार होने पर ही समस्त देशों के समस्त लोगों का सार्वकालिक कल्याण होगा।

प्रश्न 415—विष्णु की सेवा करने से किस प्रकार से जगत की सेवा एवं परोपकार हो सकता है?

उत्तर—विष्णु व्यापक वस्तु हैं। वे परब्रह्म अर्थात् सर्वापेक्षा वृहत् (बृहत्) वस्तु हैं। उनकी सेवा क रने से ही उनके अन्दर स्थित निखिल वस्तुओं या सबकी सेवा हो जायेगी। किसी विशेष अश्व का सेवक सभी अश्वों का सेवक या किसी अन्य प्राणी का सेवक नहीं हो सकता, किसी विशेष देश का सेवक समस्त देशों का सेवक नहीं हो सकता, किसी विशेष समय का सेवक सार्वकालिक सेवक नहीं हो सकता। यदि कोई बकरी या मछली को मारकर जिह्वा की सेवा करता है, तो वह एक तरफा सेवा या प्रीति

होती है, उससे बकरी या मछली की सेवा या प्रीति नहीं होगी। किसी मनुष्य या किसी विशेष देश की सेवा करते समय दूसरे मनुष्य या दूसरे देश पीड़ित होते हैं। किन्तु विष्णु की सेवा करने से समस्त वस्तुओं की ही सेवा हो जाती है, उससे सभी प्रसन्न हो जाते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु की दया अमन्दोदया, सार्वजनीन दया है। वह समस्त देशों, समस्त कालों तथा समस्त प ात्रों के लिए परम मंगलदायक है।

प्रश्न 416—महामन्त्र में हरे राम है, वे कौन से राम हैं?

उत्तर—ऐश्वर्य पर विचार से जो सेवोन्मुखता है, उसमें हरे राम से दशरथ पुत्र राम को ही समझा जाता है, किन्तु माधुर्य पर भक्त राधारमण को ही राम के रूप में जानते हैं। वे नन्दनन्दन हैं। जहाँ पर राम शब्द से राधारमण की सेवा विहित होती है, वहाँ पर हरा शब्द के सम्बोधन-पद में पराशक्ति के आकर विग्रह श्रीराधारानी को ही समझा जाता है।

श्रीराधारानी का एक नाम हरा है। **कृष्णमनो हरति इति हरा** अर्थात् राधा, जो कृष्ण के मन को हरण करती हैं अर्थात् राधा। हरा शब्द के सम्बोधन में हरे होता है। हरि शब्द के सम्बोधन में भी हरे होता है। राम तीन हैं—सीतारमण, रेवतीरमण अर्थात् बलराम तथा राधारमण राम अर्थात् राधानाथ कृष्ण।

प्रश्न 417—वास्तव सत्य का अनुसन्धान हम कैसे पा सकते हैं?

उत्तर—सविशेषविग्रह भगवान ही वास्तव सत्य हैं। वे ही एकमात्र समस्त कारणों के कारण हैं। वास्तव सत्य स्वप्रकाश हैं, वे अचेतन नहीं हैं, परन्तु स्वतः कर्तृविशिष्ट हैं। वे स्वयं को स्वयं ही प्रकाशित करते हैं। अभिज्ञता की प्रणाली या आरोह पन्थाके द्वारा वास्तव सत्य का सन्धान नहीं पाया जा सकता। वास्तवसत्य तृतीय मान (third dimension) के अन्तर्गत वस्तु नहीं हैं। जो तृतीय मान के

अन्तर्गत हैं, हम केवल उसी को ही माप सकते हैं, वह हमारे अधीन भोग्य वस्तु है। जिसे मापा जाय, वही माया है। जैसे सूर्य को देखने के लिए हमारे नेत्रों की आवृत अवस्था दूर होना अति आवश्यक है, उसी प्रकार वास्तव सत्य की धारणा करने के लिए हमारे अन्तर्निहित अतीन्द्रिय शक्ति के उदित होने तक अपेक्षा करना आवश्यक है। जिस प्रकार रात्रि के समय हजारों शक्तिसम्पन्न वैद्युतिक दीपों के द्वारा भी सूर्य को देखा नहीं देखा जा सकता, परन्तु सूर्य के उदित हो जाने पर वैद्युतिक प्रकाश के द्वारा सूर्यदर्शन की आवश्यकता नहीं रह जाती, उसी प्रकार वास्तव सत्य वस्तु को भी किसी प्रकार के इन्द्रियज्ञान के द्वारा नहीं जाना जा सकता। आवृत अवस्था में वास्तवसत्य के स्वरूप को नहीं जाना जा सकता, श्रीगुरुमुख से ही सत्यवस्तु के विषय में श्रवण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न 418—सत्य कौन है, इसे समझने से पहले किस प्रकार से हम शरणागत हो सकते हैं?

उत्तर—सर्वप्रथम शरणागत नहीं होने पर सत्य वस्तु की उपलब्धि नहीं हो सकती। जबतक हम शरणागत नहीं होंगे, तबतक हम धर्मसम्मूढ़चित्त तथा संशयात्मा होकर विनाश के पथ पर ही दौड़ते रहेंगे। इसीलिए अर्जुन कृष्ण से कह रहे हैं—**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।**

जिनके चरणों हम शरणागत होंगे, वे यदि मर्त्य व्यक्ति हुए, तो वे पारमार्थिक गुरु कहलाने योग्य नहीं हैं। मर्त्यजीव अर्थात् जिसे हम माप सकते हैं, ऐसे अधीन भोग्यवस्तु पारमार्थिक गुरु नहीं हैं। उसके चरणों में शरणागत होने पर हम कभी भी वास्तव सत्य के निकट नहीं जा सकते। श्रीगुरुदेव कृष्ण की शक्ति—कृष्णतत्त्ववित्—कृष्ण से अभिन्न तथा कृष्ण के ही द्वितीय स्वरूप या प्रकाश हैं।

प्रश्न 419—ये ही सद्‌गुरु हैं, इसे हम कैसे समझ सकते हैं?

उत्तर—आपलोग अपनी बुद्धि के विचार से जिसे गुरु

के रूप में ग्रहण करेंगे, ऐसा आरोपित व्यक्ति कभी भी गुरु नहीं हो सकता। ऐसा गुरु आपके वशीभूत वस्तु होगा—आपके इन्द्रियज्ञान के अधीन होगा। स्वयं कृष्ण जिन्हें आपके के रूप में भेजेंगे, वे स्वयं ही आपके पास बाहर में महान्तगुरु गुरु के रूप में प्रकाशित होंगे।

प्रश्न 420—गीता तथा श्रीमद्भागवत में क्या वैशिष्ट्य है?

उत्तर—श्रीमद्भागवत निरपेक्ष वास्तव सत्य का प्रचारक है। वह निर्मत्सर सज्जनों का परमप्रिय वस्तु है। गीता Infant class का course अर्थात् शिशु श्रेणी का पाठ्य है। श्रीमद्भागवत उच्च श्रेणी का अर्थात् Post Graduate श्रेणी का (पारमार्थिक बी. ए. परीक्षोत्तीर्ण गणों का) पाठ्य है। जो पारमार्थिकता की कोई बात नहीं जानते, उन्हें प्रवेशिका परीक्षा के उपयोगी करने के लिए गीताशास्त्र है तथा जिन्होंने पराविद्या में M.A., Ph. D. की है, श्रीमद्भागवत् में उनका सम्पूर्ण अधिकार हैं।

निरपेक्ष सज्जनगण गीता और भागवत में किसी प्रकार का भेद नहीं देखते। जगतमें जितने भी श्रेष्ठ विशेषण हैं, व्याकरण में जितने भी तमप् प्रत्यय हैं, वे सभी भागवत के चरणों में शोभा पाते हैं। भागवत में आत्म धर्म की बात है। श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान का अवतार है। श्रीमद्भागवत की असमोर्ध्व पदवी को कोई एक केश के बराबर भी हिला डुला नहीं सकता। परमार्थ राज्य में नए प्रवेश इच्छुक लोगों के लिए पारमार्थिक विद्यालय के शिशु श्रेणी के लिए गीता ग्रन्थ निर्दिष्ट हो सकता है और जिन्होंने गीता का अध्ययन समाप्त कर लिया है वे ही परमार्थ विद्यालय में उच्चशिक्षा प्राप्ति के लिए महाभागवतों के निकट भक्तिपूर्वक श्री मद्भागवत ग्रन्थ का श्रवणकर अच्छी प्रकार से पाठ एवं विचारकर प्रचुर मात्रा में लाभवान् हो सकते हैं।

श्रीमद्भागवत साक्षात भगवान का अवतार अधोक्षज वस्तु है। उसे हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा माप नहीं सकते। जो जितनी ही दुर्लभ एवं परम सत्य है, वह उतनी ही

सुरक्षित होती है। विमुख लोगों के समक्ष भागवत अपने को प्रकाशित नहीं करती।

प्रश्न 421—चैत्त्यगुरु क्या करते हैं?

उत्तर—भगवान् प्रत्येक जीव के हृदय में चैत्त्यगुरु के रूप में अन्तर्यामीरूप में अवस्थान करते हुए जीव की सत्-असत् वृत्तियों को नियमित करते हैं, ऐसे प्रयोजक कर्त्ता के रूप में चैत्त्यगुरु परिलक्षित होते हैं। चैत्त्यगुरु महान्त गुरु का निर्देश करते हैं। इसके अतिरिक्त महान्तगुरु के सेवक-सम्प्रदाय वर्त्मप्रदर्शक गुरु का कार्य करते हैं।

शास्त्रकारी, शास्त्रव्याख्याकारी, शास्त्रशासनानुमोदित अनुष्ठानकारी व्यक्ति अनर्थयुक्त, अनभिज्ञ एवं बालिशों के चञ्चल चित्त को सुष्ठुगति प्रदान करते हैं। ऐसे शिक्षागुरु दिव्यज्ञानप्रदाता-गुरु (दीक्षागुरु) की प्राप्ति से पूर्व सहायता करते हैं। इसलिए उन्हें वर्त्म या पथप्रदर्शकगुरु कहते हैं। चैतन्यगुरु की कृपा के बिना वर्त्म प्रदर्शक गुरु, दीक्षागुरु तथा शिक्षागुरुवर्ग की चरणसेवा प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त नहीं हो सकती। कृष्णप्रसादज सुकृति अर्थात् कृष्ण की कृपा नहीं होने तक जीव चैत्त्यगुरु की निष्कपट कृपा प्राप्त नहीं कर सकते। जीवों के हृदय में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की कामना प्रबल होने पर वे भक्तिप्रार्थी नहीं हो सकते। भाग्यक्रम में भगवान के चरणों में आश्रय ग्रहण करने की इच्छा होने पर चैत्त्यगुरु कृपाकर दीक्षागुरु तथा शिक्षागुरु के प्रति विश्वास प्राप्त करने के लिए कृपा प्रदान करते हैं।

चैत्त्यगुरु की कृपा से ही महान्तगुरु निर्दिष्ट होते हैं। चैत्त्यगुरु की कृपा दो प्रकार की होती है। उन दो प्रकार की कृपा के माध्यम से कोई आध्यक्षिक तो कोई अधोक्षज भगवान् के सेवक हो जाते हैं। जड़में प्रतिष्ठित होकर जिन ्होंने यह सिद्धान्त स्थिर कर लिया है कि इन्द्रियतर्पण ही जीव का एकमात्र आराध्य वस्तु है, उनका ही नाम अन्याभिलाषी है। वे श्रेयःपथ के पथिक न होकर क्षणिक सुखप्रद प्रेयःपथ के पथिक हैं। यही चैत्त्यगुरु की कपट कृपा है, कपटी ही कपट कृपा पाते हैं। परन्तु निष्कपट भक्ति के इच्छुक सज्जन लोग चैत्त्यगुरु की निष्कपट कृपा

पाकर धन्य हो जाते हैं। जो भगवान का सेवक होने के अतिरिक्त अन्य कुछ चाहता है, वे कपटी के अतिरिक्त और क्या हैं?

शिक्षागुरु दीक्षागुरु के वास्तव ज्ञानलब्ध शरणागत शिष्य को ही शिक्षा प्रदान करते हैं। इसलिए शिक्षागुरु का बहुत्वहोने पर भी अद्वयज्ञानदाता दीक्षागुरु के साथ मतभेद नहीं होता, बल्कि वे दीक्षागुरु के असली बन्धु होते हैं।

दिव्यज्ञान प्राप्ति के पश्चात् जीव का स्वरूप उदित हो जाने पर जो हरिसेवा की प्रणाली की शिक्षा देते हैं, ऐसे उपदेशकों का नाम ही शिक्षागुरुवर्ग हैं। ऐसे सेनावाहिनी के अग्रगामी वर्त्मप्रदर्शक गुरु शिक्षागुरु का ही पूर्वभाव है, बीच में दीक्षादाता महान्तगुरु अवस्थान करते हैं।

भगवान् चैत्त्यगुरु के रूप में जिनके निष्कपट मंगल की इच्छा करते हैं, वे ही भगवद्भक्त को महान्तगुरु या सद्गुरु के रूप में जानने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं। भगवान के अनुग्रहक्रम से जीव महाभागवत श्रीगुरुदेव का दर्शन पाकर अपने जीवन को धन्य करने में समर्थ हो जाता है।

प्रश्न 422—मन्त्र ग्रहण करके भी हमारा मननधर्म दूर क्यों नहीं हो रहा है?

उत्तर—हमने मन्त्र ग्रहण नहीं किया है। मन्त्र देने का मतलब कान में फूँक देना नहीं है। दिव्यज्ञान का नाम दीक्षा है। यह दिव्यज्ञान हमारे जन्म-जन्मान्तर के समस्त अविद्या-अज्ञान के भवन को चूर्ण-विचूर्ण कर वहाँ पर अधोक्षज-ज्ञान के नित्यवास्तव भित्तिमय भवन का निर्माण कर देता है। दिव्यज्ञान देते समय भगवान ने ब्रह्मा से कहा था—मैं ही वास्तव सत्य हूँ। यह वास्तवसत्य शक्ति द्वारा सञ्चरित होता है। वह शक्ति ही गुरु है। क्षुद्र-क्षुद्र Agent या Messenger जगत में आते रहते हैं। किन्तु जो सब महाशक्तिशाली Messengers sent by god to suit the adoptability of all the recipients उन Sole Agents का नाम गुरु है। उन Experts से ही Relation होता है। ऐसे गुरु ही हमारे मननधर्म को दूरकर हमारी चेतना की वृत्ति में

युगान्तर ला सकते हैं।

गुरुदेव से जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह जड़ ज्ञान नहीं है, वह ज्ञान साक्षात् Absolute knowledge या कृष्ण, पूर्णज्ञान, साक्षात् सम्विद् विग्रह है। मन्त्र पूर्णचेतन वस्तु है। मन्त्र मननधर्म से हमारा उद्धार कर सकता है, पापपुण्यमय मनोधर्म से उद्धारकर पारमार्थिक योग्यता प्रदान कर सकते हैं, मन्त्र की ऐसी शक्ति है।

प्रश्न 423—आत्मा का धर्म क्या है?

उत्तर—आत्मा अज वस्तु है, उसकी जननी कोई नहीं है। आत्मा की वृत्ति भोग या त्याग चाहना नहीं है—'देहि देहि' (दो, दो) की बात आत्मा में नहीं है। आत्मा परतत्त्व का Associated counterpart है। परतत्त्व के सुख की कामना या उसका दास्य ही आत्मा की वृत्ति, धर्म या स्वार्थ है।

प्रश्न 424—विलास तथा विराग का अर्थ क्या है?

उत्तर—वि पूर्वक लस् धातु से विलास शब्द निष्पन्न हुआ है। विलास का अर्थ है—इन्द्रियों की क्रिया। विराग—विषयराग या इन्द्रियचालना से अलग होकर रहना है। विलास के आधिक्य में विराग का अभाव तथा विराग के आधिक्य में विलास का अभाव है। इस जगत में विलास या जड़रसविशेषवाद एवं विराग या जड़ निर्विशेषवाद दोनों ही अप्रयोजनीय हैं। विलास भगवत्सेवा तथा विराग—कृष्णप्रीति के लिए भोग-त्याग है। शान्त के जो दो गुण हैं—कृष्णनिष्ठा, तृष्णात्याग, इसी का नाम कृष्णभक्तों का विराग है। तथा नित्यनवनवायमान भाव से चिल्लीलामिथुन का इन्द्रियतर्पण करना ही विलास है।

प्रश्न 425—क्या शब्द का नित्यत्व है?

उत्तर—अप्राकृत शब्दब्रह्म का निश्चय ही नित्यत्व है। कुण्ठराज्य में शब्द तथा शब्दी में भेद है। अतः इस जगत में जड़ शब्द अनित्य हैं। वैकुण्ठ जगत में नाम तथा नामी एक वस्तु हैं—शब्द तथा शब्दी में कोई भेद नहीं है।

प्रश्न 426—जत मत तत पथ (जितने मत, उतने पथ)—क्या यह बात सत्य है?

उत्तर—मत मनोधर्म है। **भिन्नरुचिर्हि लोकाः**—असंख्य लोगों के असंख्य प्रकार के मन के विचार या रुचि है। लोगों की रुचि के अनुसार जो पथ सृष्ट हुआ है, हो रहा है या होगा, वह कभी भी आत्मधर्म या सनातनधर्म नहीं है। जगत में मनोधर्मपरक अनेक मतों की सृष्टि हुई है तथा होगी, किन्तु शास्त्रसम्राट श्रीमद्भागवत कह रहे हैं—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥

जगत में जितने भी मत, उतने पथ—सभी अक्षजज्ञानप्रसूत मत या उनके अनुकूल पथ हैं। किन्तु श्रीहरि के प्रति जो अप्रतिहता तथा अहैतुकी भक्ति है, वही समस्त जीवों का परमधर्म या आत्मधर्म है। आत्मा केवल इसी के द्वारा ही प्रसन्न होती है। अन्यान्य धर्ममतों तथा पथों के द्वारा देह या मन की कुछ मात्रा में प्रसन्नता होने के कारण देहधर्मी या मनोधर्मी मानव इन सब प्रेयःमत या प्रेयःपथ को ही असली मत या पथ मान लेते हैं।

सत्य Living source से परमसत्य की कथाओं को सुनना चाहिए, तभी जीव का नित्य वास्तव चरम मंगल हो सकता है। अन्यथा मनुष्य प्रतिमुहूर्त ही विपथगामी होगा।

प्रश्न 427—क्या शुद्धभक्तों के संग की विशेष आवश्यकता है?

उत्तर—निश्चय ही। कनिष्ठ अधिकारी या कोमल श्रद्धावाले व्यक्ति वास्तव में श्रीमूर्ति की उपासना नहीं समझ सकते। उनकी श्रीमूर्ति में प्राकृत या जड़बुद्धि सम्पूर्णरूप से दूर नहीं होती। वे भक्तों के प्रकृततत्त्व या मर्यादा को समझ नहीं सकते। इसीलिए साधुगुरु कोमल श्रद्धावाले कनिष्ठाधिकारियों को शुद्धभक्तों का संग करने के लिए कहते हैं। शुद्धभक्तों के संग के बिना मानव का कभी भी नित्य वास्तव चरम मंगल नहीं हो सकता और न ही उनकी यथार्थ मूर्तिपूजा होती है।

प्रश्न 428—कोई कोई कहते हैं कि श्रीमूर्तिपूजा एक means to an end अर्थात् साध्य प्राप्त करने का उपायमात्र है, क्या यह बात ठीक है?

उत्तर—कभी नहीं। यह भी एक प्रकार का प्रकाण्ड Blasphemy (अपराध) हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है—

प्राकृत करिया माने विष्णु कलेवर।
विष्णुनिन्दा नाहि आर इहार उपर॥
ईश्वरेर श्रीविग्रह-सच्चिदानन्दाकार।
से विग्रहे कह—सत्त्वगुणेर विकार॥
श्रीविग्रह ये ना माने सेइ त पाषण्ड।
अस्पृश्य, अदृश्य सेइ या यमदण्ड्य॥

अर्थात् यदि कोई विष्णु के कलेवर या मूर्ति को प्राकृत अर्थात् जड़ मानता है, तो इससे अधिक विष्णुनिन्दा और नहीं हो सकती। ईश्वर का विग्रह सच्चिदानन्दमय होता है, जो इस विग्रह को मायिक सत्त्वगुण का विकार कहता है तथा जो श्रीविग्रह को नहीं मानता, वह पाषण्डी है। वह अस्पृश्य, अदृश्य है तथा वह यमराज के दण्ड का अधिकारी हैं।

विष्णुमूर्ति चिन्मयी होती है, अन्यान्य देवताओं की भाँति मानवकल्पित नहीं होती। शास्त्र कहते हैं—

नाम, विग्रह, स्वरूप तिन एकरूप।
तिने भेद नाहि, तीन चिदानन्दरूप॥

अर्थात् भगवान का नाम, उनका विग्रह और उनका स्वरूप तीनों एक समान हैं, उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। तीनों ही चिदानन्दरूप होते हैं।

कृष्णविग्रह साक्षात् कृष्ण ही हैं। श्रीविग्रह भगवान का अर्चा अवतार है। हमारे हृदयदेवता ही कृपाकर बाहर में श्रीमूर्ति के रूप में प्रकाशित होते हैं।

प्रश्न 429—आचार्य कौन हैं?

उत्तर—आचार एवं प्रचार-परायण भगवद्-भक्त ही आचार्य हैं। आचार्य निरपेक्ष और मुक्त होते हैं। वे स्वयं सम्पूर्णरूप से असत्संग त्याग और निरन्तर कृष्णचर्चा का

महान आदर्श दिखाकर जो निर्भीक तथा निरपेक्षरूप से सभी को असत्संगत्याग कि बात कहकर उनका असत्संग छुड़ा सकते हैं, वे ही आचार्य हैं।

यदि प्राण न दिया जाय, तो प्रचार नहीं हो सकता। जो प्राण दे सकते हैं, वे ही प्रचार कर सकते हैं।

प्रश्न 430—परतन्त्र जीव की स्वतन्त्रता कहाँ से आयी?

उत्तर—हमलोग सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान के अणु चिदंश हैं। इसीलिए पूर्ण वस्तु भगवान के गुण हममें अणुमात्रा में विद्यमान हैं। कृष्ण में पूर्णस्वतन्त्रता है तथा जीव में आंशिकरूप में स्वतन्त्रता है। विमुखता दो प्रकार की हो सकती है—एक भोगोन्मुखी तथा दूसरी त्यागोन्मुखी। पथ दो हैं—एक जड़विलास का पथ तथा दूसरा चिद्विलास का पथ। कोई भी व्यक्ति निरपेक्ष या तटस्थ अवस्था में स्थित नहीं रह सकता। वह या तो भोगों की ओर, नहीं तो भगवान की सेवा की ओर जाता है।

यदि सब समय भजन किया जाय, तो माया का आवरण नहीं रह सकता। भजन सब समय होना चाहिए। भजन में किसी प्रकार का छिद्र या दोष होने पर वहीं से उसी छिद्र या दोष का आश्रयकर माया हमें विपत्ति में डाल देती है।

प्रश्न 431—हमारा प्रभुत्व अभिमान या भोक्ता भिमान कब कटेगा?

उत्तर—जबतक हम भगवत्सेवक अभिमान में प्रतिष्ठित नहीं हो जाते, जबतक हमारे हृदय में वैष्णवी प्रतिष्ठा नहीं आ जाती, तबतक हम जगत को अपने भोग्य वस्तु के रूप में देखते हैं, जिससे 'ईशावास्य' जगत् दर्शन नहीं होता। ऐसी अवस्था में प्रभुत्व का अभिमान हमारे बुद्धि में घुसा रहता है। हमारी भोग की प्रवृत्ति—हमारी दुर्बुद्धि दूर हो सकती है, केवल दिव्यज्ञान के द्वारा।

प्रश्न 432—हमारी भगवान के प्रति निर्भरता क्यों नहीं आ रही है?

उत्तर—जब तक अपनी शक्ति के ऊपर, अपनी आत्मम्भरिता के ऊपर, अपनी अभिज्ञता के ऊपर निर्भर रहने की बुद्धि रहती है, तबतक मनुष्य भगवान के चरणों में शरणागत नहीं हो सकता। प्रपत्ति या शरणागति न आनेतक हम आरोहवाद को ही महत्व देंगे। जब हमें अनुभव होगा कि हमारी शक्ति अति तुच्छ है, हमारा अहंकार किसी काम का नहीं है तथा हमारी चेष्टाएँ व्यर्थ हैं, तभी हम शरणागत होकर अवरोहवाद को ग्रहण कर सकेंगे। जब हमारे हृदय में भगवान के आश्रय की महिमा उदित होती है, तभी शरणागति या अवरोहवाद हृदय में उदित होता है। अतः जो जहाँ पर है, वहीं पर रहकर साधु (कृष्णभक्तों के) मुखद्वार से अवतीर्ण वैकुण्ठवार्ता (हरिकथा) को श्रवण करना चाहिए। तभी सभी समस्याओं का समाधान हो सकेगा तथा भगवान के प्रति निर्भरता आ जायेगी।

प्रश्न 433—भगवान कौन हैं?

उत्तर—भगवान अधोक्षज वस्तु हैं। अधोक्षज शब्द का अर्थ है—जड़ इन्द्रियों से अतीत Godhead is He who has reserved the absolute right of not being exposed to present human senses. उसी को भगवान कहते हैं, जो कभी मनुष्य या प्राणीजगत के भोगोन्मुख जड़ इन्द्रियों के अधीन नहीं होते। उन्होंने यह अधिकार सम्पूर्णरूप से अपने ही हाथ में रखा है।

प्रश्न 434—जीव बद्ध क्यों हुआ?

उत्तर—जीव की free will है, अर्थात् जीव की स्वतन्त्र इच्छा है। उसी का अपव्यवहार होने के कारण वह बद्ध हो गया है।

प्रश्न 435—तो "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारुढ़ानि मायया॥" [श्रीमद्भगवद्गीता 18.61] (अर्थात् कृष्ण ही परमात्मा के रूप में समस्त जीवों

के हृदय में अवस्थित हैं। यन्त्रारूढ़ वस्तु जिस प्रकार घूमती रहती है, उसी प्रकार समस्त जीव ईश्वर के नियन्त्रण में धर्मवशतः जगत में घूमते रहते हैं।) गीता के इस वाक्य की सार्थकता ही क्या रही?

उत्तर—गीता का यह श्लोक तो इसी बात का समर्थन कर रहा है। विष्णु ही समस्त जीवों के नियन्ता हैं तथा ईश्वर हैं। जीव जो-जो कर्म करते हैं, ईश्वर उसी के अनुरूप उन्हें फल प्रदान करते हैं। जीव हेतुकर्ता (प्रयोज्यकर्ता) और भगवान प्रयोजककर्ता है। अपने द्वारा किये गये कर्मों का कर्ता होकर फलभोग के अधिकारी होते हैं एवं भावी कर्मों के उपयोगी होते हैं। वास्तव में उन समस्त फलभोगों में एवं कार्यकरण में प्रयोजककर्ता के रूप में ईश्वर का ही कर्तृत्व है। ईश्वर फलदाता हैं तथा जीव फलभोक्ता है।

प्रश्न 436—क्या जीव स्वतन्त्रता का सद्व्यवहार या असद्व्यवहार भगवान की प्रेरणा से करते हैं?

उत्तर—यदि भगवान की प्रेरणा से होता तो उसके द्वारा भगवान की ही सेवा होती, भगवान की विस्मृति नहीं होती।

प्रश्न 437—तो फिर सबकुछ भगवान की इच्छा से ही होता है या सभी भगवान की कृपा है—यह सिद्धान्त कैसे हो सकता है?

उत्तर—श्रीमद्भागवत इसका उत्तर दे रहे हैं—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

अर्थात् जो व्यक्ति अपने किये कर्मों के फल को भगवान की कृपा मानता है और प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है, उसे निर्विकार मन से भोग करते हुए तन-मन-वचन से स्वयं को भगवान के चरणों में समर्पित करता हुआ जीवन धारण करता है, वे ही

मुक्ति के आश्रयस्वरूप इन चरणकमलों के अधिकारी हैं।

इस जगत से जिसकी छुट्टी पाने की योग्यता हो गयी है, वह विचार करता है कि यदि परम मंगलमय भगवान के ऊपर दोषारोप करूँ तो सेवा प्रवृत्ति का अभाव होने के कारण मैं कभी भी माया से मुक्त नहीं हो पाऊँगा। किन्तु जो सेवोन्मुख होकर समस्त असुविधाओं को भगवान का अनुग्रह या दया मानकर भगवान के प्रति और भी अधिक आकर्षित हो जाते हैं, वे ही अनायास ही मुक्तिपद के अधिकारी होते हैं।

प्रश्न 438—हम लोग जो पाप करते हैं, क्या वह भी भगवान की दया है?

उत्तर—नहीं, ऐसा नहीं है। पाप करने की प्रवृत्ति हमलोगों की परीक्षा के लिए ही रखी है। जिस प्रकार शिशु की रुचि की परीक्षा के लिए माता-पिता उसके सामने पैसा, अन्न, भागवतशास्त्र आदि रखते हैं तथा शिशु अपनी रुचि के अनुसार ही ग्रहण करता है। दया के सागर भगवान बहिर्मुख मानव की बुद्धि के अनुसार निर्दय
जैसे लगते हैं। किन्तु दयामय भगवान का सभी कुछ उसी प्रकार दया ही है, जिस प्रकार पिता का चुम्बन तथा थप्पड़ दोनों ही शिशु के प्रति दया है। यदि भगवान की दया दण्ड जैसी लगे तो समझना चाहिए कि Serving temper (सेवोन्मुखता) या Attraction for God (भगवान के प्रति अनुरक्ति) में कमी आ रही है। भगवान सभी के आश्रय हैं। जो उनके पास यह आशा लेकर जाता है कि मैं भगवान का आश्रय पाऊँगा, भगवान अपने प्रति उसकी अनुरक्ति की परीक्षा लेने के लिए उसे अनेक कष्ट प्रदान करते हैं। डाक्टर ने छुरी से मेरे फोड़े को काट दिया, इससे यदि मैं उसे निर्दय मान लूँ, तो यह मेरी भूल होगी। उसी प्रकार अज्ञ लोग अपने असली मंगलाकांक्षी भगवान को अमंगलकारी तथा निर्दय मानने की भूल कर बैठते हैं। माया ने इस जगत में नाना प्रकार की प्रलोभन की वस्तुएँ सजाकर रखी हैं। हम उन वस्तुओं के प्रति आकृष्ट होकर कभी स्वेच्छाचारी असत्कर्मी, कभी लोगों के कल्याणजनक

कार्य करने के नाम पर सत्कर्मी हो जाते हैं। कभी हम निर्भेद ब्रह्मानुसन्धान को ही अच्छा मानने लगते हैं। तथा कभी शाक्यसिंह बुद्ध एवं शंकराचार्य के मत का आदर करते हैं। इन सबके द्वारा हमारा मंगल नहीं होगा। जीव का मंगल तो केवल भगवान की कथाओं में नियुक्त होने पर ही होगा। इसके अतिरिक्त कल्याण का अन्य कोई उपाय नहीं है। भगवान किसी की भी स्वतन्त्रता में बाधा नहीं देते। वे चेतनधर्म के हन्तारक नहीं हैं। यदि वे चेतना के वैशिष्ट्य में बाधा देते, तो यह उनकी निर्दयता का ही परिचय होता। वे केवल चेतनवृत्ति को चेतनवृत्ति के सत् एवं असत् व्यवहार के विषय में ज्ञानमात्र प्रदान करते हैं। वे ही श्रीचैतन्य के रूप में बता रहे हैं—जैमिनी ऋषि के अभ्युदयवाद तथा शंकराचार्य के निर्भेद-ब्रह्मानुसन्धान की बातों के प्रति आकृष्ट मत होओ। उसमें चेतनता या स्वतन्त्रता का सद्व्यवहार नहीं है। हमें वही कर्म करने चाहिए, जिनसे भगवान की सेवा होती है। जिनमें भगवान की सेवा नहीं हो, ऐसे कर्म नहीं करने चाहिए।

प्रश्न 439—हम अन्य कार्यों में क्यों व्यस्त हो रहे हैं?

उत्तर—हमारे भाग फूट गये हैं। इसीलिए हम भगवान की सेवा छोड़कर अन्य कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं। भगवान की सेवा ही हमारा एकमात्र कर्तव्य है, यह अटल सत्य हमारी बुद्धि में घुस नहीं रहा है। इसीलिए भगवान की सेवा की अपेक्षा अन्य कार्यों को ही हम श्रेष्ठ मान रहे हैं। बार-बार साधुसंग करने पर भी हमारी यह भूल दुर नहीं हो रही है। बहिर्मुख होने के कारण हमारी प्रवृत्ति माया में बद्ध होने की हो गयी है, जिस प्रकार मछली मछुआरे के द्वारा डाले गये चारे को खाती है। जो सब स्त्री-पुत्र-कन्या आदि का संग फिर कभी भी सम्भव नहीं है, उनके भोग के लिए ही हम अपना अमूल्य समय नष्ट करते हैं, सिर का पसीना पैरों में बहाकर भी हम उनके भोग का इन्धन जुटाते हैं। हम आम का पेड़ लगाते हैं, बहुत कष्टपूर्वक विषय-सम्पत्ति खरीदते हैं, परन्तु उसका फल हमें नहीं,

किसी अन्य को ही प्राप्त होगा, जिसके साथ फिर कभी हम नहीं मिल पायेंगे, जो हमारे द्वारा कष्टपूर्वक अर्जित सम्पत्ति को एक दिन उड़ा देगा।

प्रश्न 440—भजनके रहस्यको कौन जान सकता है?

उत्तर—जो श्रीस्वरूप-रूपानुगवर (श्रीस्वरूप-दामोदर एवं श्रीरूप गोस्वामीके अनुगत) श्रीगुरुदेवकी विश्रम्भ भावसे सेवा करता है, केवल वही भजनके गम्भीर रहस्योंको जान सकता है। 'विश्रम्भ' का अर्थ है—सुदृढ़ विश्वास तथा प्रीति अर्थात् श्रीगुरुदेवके प्रति सुदृढ़ विश्वास (मेरे गुरुदेव कोई साधारण मरणशील तथा कर्मफलभोगी मनुष्य नहीं हैं) होना चाहिए तथा इस विश्वासके साथ प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी चाहिए।

श्रुतिमें वर्णन है—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अर्थात् यदि किसीकी भगवान्‌में जिस प्रकार दृढ़ भक्ति है, ठीक वैसे ही यदि श्रीगुरुदेवके प्रति भी हो, तो उसी महात्माके हृदयमें शास्त्रोंका वास्तविक अर्थ प्रकाशित होता है।

प्रश्न 441—हम कैसे बल पा सकते हैं?

उत्तर—आदर एवं प्रीतिपूर्वक श्रीगुरुदेवकी सेवाके द्वारा एवं नामकी सेवाके द्वारा हृदयमें प्रचुर मात्रामें भक्तिबल प्राप्त होता है।

प्रश्न 442—कर्तव्यबुद्धिसे जो कुछ किया जाय, क्या वह भक्ति है?

उत्तर—कर्तव्यबुद्धि एवं कृतज्ञता आदि ये मनकी वृत्तियाँ हैं, आत्माकी नहीं। कर्तव्यबुद्धिके द्वारा जो भी क्रियाएँ होती हैं, उनका सम्बन्ध मन, बुद्धि तथा अहङ्कारसे होता है। परन्तु भक्तिकी क्रियाओंका सम्बन्ध आत्मासे होता है। अर्थात् कर्तव्यबुद्धिसे किए गए कार्य हमें मानसिक सन्तुष्टि ही प्रदान कर सकते हैं, परन्तु भक्तिकी क्रियाओं

(नवविधा भक्ति) का पालन करनेसे आत्मा प्रसन्न होती है। प्रीतिपूर्वक जो कुछ किया जाय, वही शुद्ध भक्ति है, यह शुद्धभक्ति ही आत्माकी वृत्ति अथवा धर्म (स्वभाव) है। परन्तु कर्तव्यबुद्धि मनकी वृत्ति अर्थात् स्वभाव है। कर्तव्यबुद्धिके द्वारा जो कुछ करते हैं, उसमें प्रीति नहीं होती है। इसलिए एकमात्र आत्मधर्म (भक्ति) ही कल्याणका मार्ग है।

प्रश्न 443—अन्याभिलाष क्या है?

उत्तर—मैं जब तक इस संसारमें रहूँगा, तब तक विषयोंको भोगता रहूँगा अर्थात् अपनी इन्द्रियोंको ही सन्तुष्ट करता रहूँगा, भगवान्‌की सेवाकी कामनाके अतिरिक्त ऐसी कामनाओंको ही अन्याभिलाष कहते हैं।

प्रश्न 444—कर्त्ताभिमान कैसे दूर हो सकता है?

उत्तर—हमें एक घासके तिनकेसे भी अधिक दीन-हीन बनना होगा अर्थात् मैं भगवान्‌का सेवक हूँ, इसे अनुभव करना होगा। तभी कर्त्ताभिमान अर्थात् शरीरके प्रति आत्मबुद्धि दूर होगी तथा मैं करनेवाला हूँ—यह मिथ्या अभिमान भी दूर हो जाएगा। तब हम आनन्दपूर्वक हरिनाम कर सकते हैं।

प्रश्न 445—जीवका कल्याण कब होता है?

उत्तर—जीव जब सद्‌गुरुके चरणोंका आश्रय ग्रहण करता है, तभी वह वास्तव सत्य वस्तु भगवान्‌को जान सकता है। अतः गुरुका सेवक बनकर भगवान्‌की सेवा करने पर ही जीवका कल्याण हो सकता है।

प्रश्न 446—कृष्ण किसकी प्रार्थना सुनते हैं?

उत्तर—जो व्यक्ति आन्तरिक श्रद्धासे प्रार्थना करता है —"हे कृष्ण! मैं आपसे अपने सुखके लिए कुछ भी नहीं चाहता। आपकी जैसी इच्छा है, वह मुझे स्वीकार है। यदि उसमें मुझे कष्ट भी होता है, तो वह कष्ट भी मेरे लिए परम सुखदायक ही है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप

मंगलमय हैं। सर्वदा ही आप सभीका कल्याण करनेमें लगे रहते हैं। अतः मेरे लिए आप जो भी व्यवस्था करेंगे, वह मेरे लिए अमंगलजनक तो हो ही नहीं सकता। किसी न किसी रूपमें उसीमें मेरा कल्याण छिपा होगा।" कृष्ण केवल अपने ऐसे सेवककी प्रार्थना ही सुनते हैं, अन्य किसीकी नहीं।

प्रश्न 447—वास्तविक शिष्य कौन है?

उत्तर—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे कल्याणका भार जिनके हाथोंमें सौंप रखा है, यदि मैं उन श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंमें पूर्णरूपसे शरणागत हो सकूँ, तभी मैं वास्तविक शिष्य कहलाने योग्य होऊँगा। गुरुदेव मेरे कल्याणके लिए जो भी व्यवस्था अथवा आदेश करते हैं, उसे आदरपूर्वक सिर झुकाकर स्वीकार करना ही मेरा कर्तव्य है, यही वास्तविक शविषयोंको भोगनेमें ही अपने जीवनको नष्ट नहीं करता, बल्कि समस्त इन्द्रियोंके द्वारा निरन्तर गुरुके आनुगत्यमें भगवान्की सेवा करता रहता है, वही वास्तविक शिष्य है। संसारकी सभी वस्तुएँ गुरुकी सेवाके उपकरण हैं अर्थात् गुरुके आनुगत्यमें सभी वस्तुओंसे भगवान्की सेवा करनी चाहिए। गुरु अथवा भगवान्की सेवाकी वस्तुओंके प्रति भोगबुद्धि करना बहुत ही अमंगलजनक है। असली शिष्य प्रतिक्षण इसका अनुभवकर गुरु एवं कृष्णकी सेवाको ही अपना जीवन बना लेता है। वह अन्दर–बाहर सर्वत्र ही गुरु दर्शन करता है। अर्थात् यद्यपि शिष्य स्वयंको लघु अर्थात् दास मानता है, परन्तु उसका दर्शन लघु (भगवान्की सेवाकी वस्तुओंके प्रति भोग दृष्टि) नहीं होता है। ऐसा शिष्य सदा–सर्वदा अनुभव करता है कि इस संसारमें श्रीगुरुदेवके सिवा मेरा और कोई नहीं है। उसका एक ही अभिमान होता है कि मैं गुरुदास हूँ तथा उसकी गुरुके प्रति ईश्वर–बुद्धि होती है। वह भलीभाँति जानता है कि गुरुदेव कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं तथा उनके अभिन्न प्रकाश विग्रह भी हैं। श्रीगुरुदेव युगपत् भक्तिविग्रह तथा भगवत्–विग्रह हैं। अतः गुरुदास हुए बिना भगवान्का दास नहीं हुआ जा सकता। जो गुरुदास बनकर गुरुकी सेवा करते हैं, वे ही असली वैष्णव

अथवा असली शिष्य हैं। इनके अतिरिक्त सभी लोग अहङ्कारी एवं विमूढ़ात्मा (मूर्ख) हैं, क्योंकि वे सेवक नहीं बल्कि भोगी बनना चाहते हैं।

प्रश्न 448—एक ही जन्ममें सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है?

उत्तर—यदि शिष्य अपनी स्वतन्त्रताको पूर्णरूपसे त्यागकर गुरुकी शरणमें चला जाता है तथा उनके आनुगत्यमें अर्थात् उनके आदेश-निर्देशोंको ठीक ढंगसे पालन करते हुए निष्कपटरूपसे (मुक्ति एवं भुक्तिकी इच्छासे रहित होकर) भगवान् का भजन करे, तो उसे एक ही जन्ममें अवश्य ही सिद्धि (प्रेमभक्ति) प्राप्त हो सकती है।

प्रश्न 449—भगवान्को जाननेका उपाय क्या है?

उत्तर—श्रीगुरुदेवके श्रीमुखसे भगवान्की कथाओंको श्रद्धापूर्वक सुनना होगा। गुरुदेवके श्रीचरणकमलोंमें शरणागत हुए बिना भगवान्को जाननेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। अतः जो श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करते हैं, केवल वे ही भगवान्को जान सकते हैं।

प्रश्न 450—सबसे भयङ्कर नामापराध कौन-सा है?

उत्तर—जो गुरुदेव हमें भगवान्के श्रीचरण-कमलोंमें पहुँचानेवाले हैं, उन्हें अपने जैसा ही एक साधारण मनुष्य मान लेना सबसे भयङ्कर नामापराध है। श्रीगुरुदेवको एक मरणशील मनुष्य माननेसे करोड़ों जन्मोंतक भजन करने पर भी हमारा कल्याण नहीं हो सकता। बल्कि हृदयमें अनेक प्रकारकी सांसारिक कामनाएँ उत्पन्न होकर हमें संसार सागरमें डूबो देंगी। श्रीगुरुदेवके अतिरिक्त और कोई नहीं है जो हमें दुसङ्गसे बचा सके। श्रीगुरुदेवके प्रति मनुष्यबुद्धि होनेके कारण ही हम उनके श्रीचरणोंमें आत्मनिवेदन अर्थात् अपनेको समर्पित नहीं कर पा रहे हैं।

* * *

श्रील प्रभुपाद जी की उपदेशावली

1. श्रीमन्महाप्रभु के शिक्षाष्टक में लिखित 'परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्'—ही गौड़ीय मठ का एकमात्र उपास्य है।

2. विषयविग्रह श्रीकृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं, बाकी सब उनके भोग्य हैं।

3. हरिभजनकारी के अतिरिक्त सभी मूर्ख और आत्मघाती हैं।

4. सहनशीलता की शिक्षा प्राप्त करना मठवासी का एक प्रधान कर्त्तव्य है।

5. श्रीरूपानुग भक्तगण, अपनी शक्ति के प्रति कोई आस्था स्थापित न करके, मूल-कारण पर सारी महिमा का आरोप करते हैं।

6. श्रीहरिनाम-ग्रहण और भगवान् का साक्षात्कार, दोनों एक ही हैं।

7. जो पाँच मिशाल अथवा पंचदेवोपासना करते हैं, वे लोग, भगवान् की सेवा नहीं कर सकते।

8. मुद्रणालय की स्थापना, भक्तिग्रन्थों का प्रचार और नाम के प्रचार से ही, मायापुर की वास्तविक सेवा होगी।

9. सब परस्पर मिलकर तथा एक उद्देश्य लेकर, हरि-सेवा करे।

10. जहाँ हरिकथा हो, वहीं तीर्थ है।

11. हम लोग सत्कर्मी, कुकर्मी या ज्ञानी, अज्ञानी नहीं हैं। हम तो, निष्कपट—हरिजनों के पादत्राणवाही **'कीर्तनीयः सदा हरिः',** मंत्र में दीक्षित हैं।

12. दूसरे के स्वभाव की निन्दा न करके अपना ही सुधार करना, यही मेरा उपदेश है।

13. श्रीमन्महाप्रभु की नीति के अन्दर क्षत्रियनीति, वैश्य, शुद्र और यवननीति नहीं दिखलाई पड़ती। उनके प्रचारित वाक्य से मालूम होता है कि उन्होंने ऋषिनीति का सर्वश्रेष्ठ शृंग (शिखर) अवलम्बन किया था। हम भी उसी पद का अनुसरण करके, ब्रह्मनीति भागवतधर्म का अवलम्बन

करेंगे।

14. कृष्णविरह–कातर ब्रजवासियों की सेवा करना ही हमारा परम धर्म है।

15. महाभागवत, सर्वत्र गुरु दर्शन करता है; इसलिए महाभागवत ही एकमात्र जगद्गुरु है।

16. यदि श्रेयःपथ (नित्यकल्याणकारी मार्ग) चाहूँ तो असंख्य लोगों के विचारों का परित्याग करके, श्रौतवाणी का ही, श्रवण करूँगा।

17. श्रेयः (नित्यमंगलमय) वस्तु ही प्रिय होनी उचित है।

18. रूपानुगजन के दासत्व बिना, अन्तरंगभक्त की और कोई लालसा नहीं हैं।

19. वैष्णवगुरु की आज्ञा–पालन करने पर यदि मुझको 'दाम्भिक' होना पड़े, पशु होना पड़े और अनन्तकाल तक नरक में जाना पड़े तो मैं अनन्तकाल के लिए इस प्रकार के नरक में चला जाऊँगा। दुनियाँ के और सब लोगों के विचारों को श्रीगुरुपादपद्म की शक्ति से मुष्टिकाघात द्वारा विदूरित करूँगा। मैं इतना बड़ा दाम्भिक हूँ।

20. निर्गुण–वस्तु का साक्षात्कार करने के लिए एकमात्र कान को छोड़कर और कोई उपाय नहीं है।

21. जिस क्षण हमारा रक्षाकर्ता नहीं रहेगा उसी क्षण हमारी निकटवर्तीनी सब वस्तुएँ शत्रु होकर हम पर आक्रमण करेंगी। सच्चे साधु की हरिकथा ही हमारी रक्षक है।

22. खुशामद करने वाला गुरु या प्रचारक नहीं होता।

23. पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि लाखों योनियों में रहना अच्छा है; तथापि कपट का आश्रय लेना अच्छा नहीं है। कपटरहित–व्यक्ति का ही मंगल होता है।

24. सरलता का दूसरा नाम ही वैष्णवता है, परमहंस वैष्णवदासगण सरल होते हैं, इसलिए वे ही सर्वोत्कृष्ट ब्राह्मण हैं।

25. जीव की बहिर्मुख रुचि को बदलना ही सर्वापेक्षा दयालु व्यक्तियों का एकमात्र कर्तव्य है। माया के जाल से एक जीव की रक्षा कर सको तो अनन्त कोटि अस्पताल

बनाने की अपेक्षा उससे अनन्तगुण परोपकार का कार्य होगा।

26. गौड़ीय मठ का निःस्वार्थ—दयाशील प्रत्येक व्यक्ति इस मनुष्य समाज में से प्रत्येक व्यक्ति के चित्शरीर के पोषण के लिए दो सौ गैलन रक्त खर्च करने के लिए प्रस्तुत रहे।

27. गौड़ीय मठ के सेवकों के रात-दिन के परिश्रम से जो अर्थ संग्रह होता है, उसकी एक-एक पाई, जगत् का इन्द्रियतर्पण बन्द करके कृष्णइन्द्रियतर्पण की कथा में खर्च होता है।

28. जिनकी आत्मविद् के पास, स्वतः भगवत्सेवा की वृत्ति सब समय जाग्रत नहीं हुई, उन सब लोगों का संग कितना ही प्रीतियुक्त क्यों न हो, परित्याग करना चाहिए।

29. केवल आचाररहित प्रचार, कर्म के अन्तर्गत है।

30. भोगी के भोगों के लिए ईंधन जोड़ने और ज्ञानी के विषय से विदग्ध विचारों का अनुगमन करने के लिए, हमारे मठ की स्थापना नहीं हुई है। केवल एक-दो रुपयों से मठ का उपकार समझना हमारा लक्ष्य नहीं है। परन्तु यदि किसी का भी उपकार कर सको तो तभी वह व्यक्ति कृष्णसेवामय मठ की सेवा करेगा।

31. श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी ने 'श्रीनामहट्ट' के झाड़ूदाररूप से अपना परिचय देकर, आप्राकृतलीला को प्रकट किया है। यह ठीक है कि उनकी प्रपंच को मार्जन करने की इस सेवा के उपकरण के रूप में हमारे जैसे सैकड़ों लोगों द्वारा महाजनानुगमन एवं बहिर्मुख संग का परित्याग करने का कार्य, जगत् का अप्रिय होने पर भी, हम लोगों का वास्तविक कल्याण करेगा।

32. भगवान और भक्त की सेवा करने से ही गृहव्रत-धर्म क्षीण होता है।

33. श्रीकृष्ण के अतिरिक्त विषय आदि का संग्रह करना ही हमारी मूल-व्याधि है।

34. हम लोग जगत् में लकड़ी, पत्थर के कारीगर बनने नहीं आये। हम तो श्रीचैतन्यदेव की वाणी के

वाहकमात्र हैं।

35. हम लोग इस जगत् में अधिक दिन नहीं रहेंगे, हरिकीर्तन करते-करते हमारा देहपात होने से ही इस देह-धारण की सार्थकता होगी।

36. श्रीचैतन्यदेव के मनोऽभीष्ट संस्थापक, श्रीरूपगोस्वामीके चरण कमलों की धूलि ही हमारे जीवन की एकमात्र अभिलाषा की वस्तु है।

37. निर्भीक होकर जो निरपेक्ष सत्यकथा बोलता है, शत-शत जन्मों के बाद तथा शत-शत युगों के बाद भी कोई न कोई इसका निगूढ़ सत्य तत्त्व समझ सकता है। शत-शत गैलन रक्त खर्च न होने पर्यन्त एक व्यक्ति को भी सत्यकथा समझाई नहीं जा सकती।

38. जो लोग नित्यप्रति एक लाख नाम नहीं करते, उसके हाथ से भगवान कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करते।

39. अनर्थयुक्त अवस्था में श्रीराधाजी का दासी होने का सौभाग्यलाभ कभी नहीं होगा। जो लोग अनर्थयुक्त अनाधिकारी अवस्था में परमश्रेष्ठ सेविका श्रीराधारानी की अप्राकृत लीलाओं की आलोचना करते हैं, वे लोग इन्द्रियारामी, प्रच्छन्न-भोगी ओर प्राकृत सहजिया हैं।

40. श्रीनाम ग्रहण करते-करते अनर्थ निवृत्ति होने पर श्रीनाम के द्वारा ही रूप, गुण और लीला की अपने आप स्फूर्ति प्राप्त होगी। चेष्टा करके कृत्रिम भाव से रूप, गुण और लीला का स्मरण नहीं करना चाहिए।

41. दीक्षा का अभिनय करना और दिव्य ज्ञान प्राप्त करना एक नहीं है।

42. जो लोग भगवान की सेवा करते हैं, जगत में वे ही धन्य हैं। सभी असुविधाओं, कष्टों और दुःखों के रहने पर भी भगवानकी कथा श्रवण, कीर्तन और स्मरण करते रहना चाहिए।

43. श्रीगुरुदेव एकान्त रूप से भगवान के सेवक हैं। उनके प्रत्येक कार्य भगवद् सेवा के सर्वोत्तम आदर्श हैं, गुरुदेव के दर्शन में जब तक ऐसी दृष्टि नहीं होगी तब तक मेरी आँखों में बाधा की पट्टी लगी रहेगी। उनकी दया प्राप्त नहीं होने से, दिव्य ज्ञान प्राप्त नहीं होने से, हम गुरुपादपद्म

की महिमा को समझ नहीं सकते हैं।

44. पैसा होने से ही भगवत सेवा होगी ऐसा नहीं; परन्तु हरिकथा-प्रचार एवं हरिसेवा के लिए निर्बन्धिनी मति, दृढ़ संकल्प एवं अकपट सेवामय प्राण रहने से ही भगवत सेवा कार्य होगा। तुम लोग पैसे के लिए चिन्ता मत करना। अर्थ या पैसे के द्वारा मठ आदि की रक्षा नहीं होती, परन्तु विषयों का स्वभाव ही ऐसा है, जो कि हरिसेवा में अयुक्त व्यक्ति को विषय-भोग में ही प्रमत्त करा देता है।

45. अनन्त जीवन वेदान्त पढ़ने से मुक्ति नहीं होगी। अनन्त काल नाक दबाकर जमीन से दस बीस हाथ ऊपर उठने पर भी मंगल नहीं होगा, परन्तु स्वयं भागवत स्वरूप भक्तों के मुख से श्रीमद्भागवत कथा श्रवण करने से संसार का मंगल निश्चित रूप से होगा।

* * *

श्रील प्रभुपादका एक अलौकिक नियम

श्रील प्रभुपादका एक अलौकिक नियम यह था कि जब कोई शिष्य अथवा कोई भी व्यक्ति उन्हें प्रणाम करता, तो वे भी हाथ जोड़कर 'दासोऽस्मि' कहकर प्रतिनमस्कार करते। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी गुरुदेवका ऐसा व्यवहार देखकर सब समय छिपकर ही उन्हें प्रणाम करते थे। श्रील प्रभुपादका एक और भी अलौकिक व्यवहार यह था कि वे शिष्यों या दूसरोंको सर्वदा आदरसूचक 'आप' द्वारा सम्बोधन करते थे। किन्तु श्रीविनोदविहारीकी अन्तरङ्ग सेवासे सन्तुष्ट होकर इन्हें 'तू', 'तुई' आदि प्रिय शब्दोंसे सम्बोधन करते। प्रभुपादके शिष्योंमें ऐसा सौभाग्य दो-एक को ही प्राप्त था।

* * *

श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीकी समाधिका स्थानान्तरण

सन १९३२ ई. की घटना है। भगवती भागीरथी आज उफनती हुई प्रवाहित हो रही थीं। चारों तरफ पानी-ही-पानी दीख रहा था। उसके प्रबलतर वेगसे पश्चिमी तट

कट-कटकर उसके प्रवाहमें विलीन हो रहा था। श्रील प्रभुपादके परमाराध्य श्रीगुरुदेवकी समाधि नवद्वीपधामके अन्तर्गत गङ्गाके पश्चिमी तटपर अवस्थित थी। श्रील प्रभुपादने १९१५ ई. में उत्थान एकादशीके दिन स्वयं अपने हाथोंसे उनकी समाधि प्रदान की थी। जब श्रील प्रभुपादको यह पता चला कि उनके श्रीगुरुदेवकी समाधि गङ्गाके प्रवाहमें बह जानेवाली है, उसी समय उन्होंने अपने अन्तरङ्ग सेवक श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको निर्देश दिया कि किसी भी प्रकार उस समाधिको सम्पूर्ण रूपसे श्रीधाम मायापुरमें श्रीराधाकुण्डके तटपर लाया जाये और वहींपर उनकी पुनः प्रतिष्ठा की जाये। श्रीविनोदविहारी प्रभु अपने प्रिय सतीर्थ बन्धु श्रीपाद नरहरि सेवाविग्रह प्रभु तथा अन्यान्य गुरुसेवकोंकी सहायतासे कई दिनों तक दिन-रात अथक परिश्रमके पश्चात् उस समाधिको सुरक्षित अखण्ड रूपमें सङ्कीर्तनके साथ श्रीचैतन्य मठमें ले आये। श्रील प्रभुपाद बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे राधाकुण्डके तटपर समाधि-स्थल खोदनेका कार्य आरम्भ किया।

श्रील सरस्वती प्रभुपाद जिस समय अपने श्रीगुरुदेव श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेपर उन्हें समाधिस्थ करने जा रहे थे, उस समय कुलियाके उच्छृंखल एवं दुर्नीतिपरायण बाबाजी लोग नाना प्रकारसे विघ्न-बाधा पहुँचाने लगे थे। किन्तु अन्तमें वे कुछ नहीं कर सके। श्रील प्रभुपादने गङ्गा तटपर कुलियामें ही इन्हें समाधि प्रदान की थी। उन बाबाजी लोगोंने इस बार भी समाधिको श्रीधाम मायापुरमें स्थानान्तरण करते समय घोर विरोध किया और बिघ्न-बाधाएँ पहुँचायीं। किन्तु इसे रोक नहीं सकनेपर कृष्णनगर कोर्ट में श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके नामसे समाधिको हटाने में प्रधान आसामीके रूपमें मुकदमा दायर कर दिया। यह मुकदमा एक ईसाई धर्मावलम्बी न्यायाधीशकी अदालतमें पेश हुआ। न्यायाधीशने इस केसको बड़ी गम्भीरतासे लिया। ईसाई धर्मके अनुसार किसी समाधिको उसके मूल स्थानसे हटाना एक अक्षम्य अपराध होता है और उसके लिए पाश्चात्य देशोंमें बड़ी कड़ी सजा होती है। न्यायाधीशने दोनों पक्षोंका तर्क-वितर्क सुनकर आसामीको

कड़ी सजा देनेका मन बना लिया था। ऐसा देखकर ब्रह्मचारीजीने अन्तमें न्यायाधीशसे बड़ी गम्भीरतासे कहा —"महाशयजी! आपको मालूम होना चाहिये कि हमलोग ईसाई मतावलम्बी नहीं हैं। हमलोग भारतीय वैदिक रीति-नीति अपनानेवाले शुद्ध वैष्णव हैं। वैष्णवधर्मके अनुसार विशेष परिस्थितियोंमें विशेष कारणोंसे समाधिको स्थानान्तरित किया जा सकता है, इसके हजारों प्रमाण हैं।" यह सुनते ही न्यायाधीश महोदयका विचार बदल गया। उन्होंने श्रीविनोदविहारीके पक्षमें निर्णय दिया—"आसामीको बिना किसी आरोपके मुक्त किया जाता है।" श्रील प्रभुपाद सारी बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने श्रीगौड़ीय मठ-मिशनके सभी मामला-मुकदमोंका भार कृतिरत्न प्रभुके ऊपर सौंप दिया। यह कार्य साधारण लोगोंके लिए दुःसाध्य और असम्भव था।

* * *

श्रील प्रभुपादके विचारसे आदर्श गुरुसेवक

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी (जो श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज का संन्यास के पूर्व का नाम है) बड़े ठाट-बाट के साथ रहते थे। बड़े ठाट-बाटके साथ रहते थे। जमींदारीकी सारी व्यवस्था सँभालते थे। मठ-मन्दिरकी सेवाके लिए आवश्यकता पड़नेपर कोर्ट-कचहरी तथा उच्च पदस्थ प्रशासकोंके साथ भी मिलते थे। उनका इस प्रकारका बाह्य जीवन देखकर कुछ अनभिज्ञ मठवासियोंकी यह धारणा थी कि वे केवल सांसारिक विषयोंमें ही निपुण हैं, भक्तिसे इनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। ये सदा-सर्वदा प्रजाओंके शासन, मामला-मुकदमा आदि वैषयिक कार्यों में लिप्त रहकर लोकसमाजमें ही सुपरिचित हैं। भक्तिके अङ्गोंको पालन करनेकी इन्हें फुर्सत नहीं। यह बात यहीं तक नहीं रही। दिल्ली गौड़ीय मठके कुछ ब्रह्मचारियोंने इस विषयमें श्रील प्रभुपादको एक लम्बा-चौड़ा पत्र भी दे दिया। श्रील प्रभुपाद उस पत्रको पाकर बड़े ही असन्तुष्ट हुए। उन्होंने साथ-ही-साथ बड़ी कठोर भाषामें उस पत्रका प्रतिवाद करते हुए लिखा कि विनोदविहारी एक असाधारण गुरुनिष्ठासम्पन्न

आदर्श वैष्णव है। वह भक्तिके गूढ़ और उच्च कोटिके सिद्धान्तोंमें पूर्ण पारङ्गत है। विशेषतः वेदान्तके गम्भीर विचारोंमें उसका प्रवेश है। उसमें भजनके प्रति अत्यधिक उत्साह, हरि–गुरु–वैष्णवकी प्रीतिके लिए अखिल चेष्टा–परायणता एवं सर्वस्व त्यागकी भावना है। साथ ही स्नेह, दया, शासन–क्षमता, संगठन–शक्ति तथा दायित्वपूर्ण कार्यों में सञ्चालन–शक्ति आदि असाधारण गुणोंका समावेश है। जो लोग यह समझते हैं कि विनोदमें वैष्णवता नहीं है, मैं समझता हूँ कि ऐसा समझनेवालोंमें ही वैष्णवताका सम्पूर्ण अभाव है। जो लोग वैष्णवोंका आन्तरिक मर्म नहीं जानकर इनकी निन्दा करते हैं. उनका ध्वंस अनिवार्य है। इसे कोई भी रोक नहीं सकता।

श्रीपाद नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी उस समय दिल्ली गौड़ीय मठके एक प्रमुख सेवक थे। ये श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध वक्ता थे। श्रील प्रभुपादके प्रति इनकी अत्यन्त गम्भीर निष्ठा थी। सौभाग्यवश इन्होंने भी श्रील प्रभुपादके लिखे हुए पत्रको पढ़ा और तबसे श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके बाद श्रीगौड़ीय मठको छोड़कर ये भी अपने सतीर्थ श्रीविनोदविहारी 'कृतिरत्न' प्रभु एवं श्रीनरहरि 'सेवाविग्रह' प्रभु आदिके साथ श्रीधाम नवद्वीपमें चले आये तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिमें रहकर साधन–भजन एवं भारतके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार करते रहे। उसी समय प्रसङ्गवशतः इन्होंने श्रील प्रभुपाद द्वारा दिल्ली गौड़ीय मठके ब्रह्मचारियोंके लिए लिखे हुए पत्रके सम्बन्धमें अस्मदीय गुरुपादपद्मके निकट रहस्योदघाटन किया।

* * *

श्रीगुरुदेवके आदेशसे पूर्वाश्रमकी जमींदारीकी रक्षा

विनोदविहारीके गृहत्यागके पश्चात् घरकी स्थिति ढंवाडोल हो गयी। पुत्रविरहमें स्नेहमयी जननी अत्यन्त अस्वस्थ रहने लगीं। जमींदारीकी स्थिति भी बिगड़ गयी, क्योंकि बालक विनोद ही जमींदारीकी देखभाल करता था।

श्रील प्रभुपादने कृपाकर इन्हें कुछ दिनोंके लिए जमींदारीकी व्यवस्था ठीक करनेके लिए पूर्वाश्रम भेजा था। इनके घर आनेकी खबर चारों ओर फैल गयी। इन्होंने कुछ ही दिनोंमें बड़ी कुशलतासे प्रजाका विद्रोह शान्त कर दिया और पूर्वकी भाँति सभी लोग लगान नियमित रूपसे देने लगे। इस प्रकार जमींदारीकी सुव्यवस्थाकर माताका आदेश लेकर गुरुगृहमें पुनः लौट आये।

कुछ ही दिनोंमें इनके घरसे श्रील प्रभुपादके नामसे एक पत्र आया, जिसमें प्रभुपादसे इन्हें शीघ्र ही पूर्वाश्रम भेज देनेकी प्रार्थना की गयी थी। पुत्रविरहसे कातर माँ अन्तिम समयमें इनका दर्शन करना चाहती थीं। श्रील प्रभुपादने इन्हें बुलाकर घर जाकर अपनी माँको देख आनेका आदेश दिया। श्रील प्रभुपादका आदेश सुनकर ये अपनी भजनकुटीमें लौट आये और दिनभर बाहर नहीं निकले। दूसरे दिन श्रील प्रभुपादने किसी ब्रह्मचारीको बुलाकर पूछा—"विनोदविहारीको घर जानेके लिए कहा था, वह गया या नहीं? वह दीख नहीं रहा।" ब्रह्मचारीने उत्तर दिया—"विनोदविहारी अपनी भजनकुटीमें बैठा-बैठा हरिनाम कर रहा है। अभी तो वह गया नहीं।" श्रील प्रभुपादने विनोदविहारीको अपने पास बुलाया और पूछा—"मैंने तुम्हें घर जानेको कहा था, तुम घर नहीं गये?" इन्होंने उत्तर दिया—"प्रभो! मैं घर नहीं गया।" "क्यों नहीं गया?"—प्रभुपादने पूछा। इन्होंने विनीत स्वरसे उत्तर दिया—"मैं इसलिए नहीं गया कि मेरी माताजी मुझे बहुत स्नेह करती थीं। यदि वह मरते समय मुझे यह आदेश दें कि बेटा हमारा यह अन्तिम आदेश है कि तुम घर लौटकर घरकी सारी व्यवस्था सँभालो, तो मैं उसके अन्तिम आदेशका उल्लंघन कैसे कर सकूँगा? ऐसी दशामें मेरा मनुष्य जन्म निष्फल हो जायेगा। मेरी गुरुसेवा, हरिकथा-श्रवण और साधन-भजन सबकुछ चौपट हो जायेगा। आपने कहा है कि मनुष्य जीवन बहुत ही दुर्लभ है। हरिभजन ही जीवनका एकमात्र चरम कर्त्तव्य है। यह कर्त्तव्य केवल मनुष्य जीवनमें ही सम्भव है। किसी मनुष्य जन्ममें आपके जैसा सद्गुरु मिलना अत्यन्त दुर्लभ है—

सकल जन्मे माता-पिता सबे पाय।

कृष्ण गुरु नाहि मिले, भजह हियाय॥

आपने यह भी कहा है कि गुरु एवं भगवान् मुकुन्दकी सेवामें अपनेको अर्पित करनेवाले व्यक्तिके ऊपर माता-पिता, पितर, देवता आदि किसीका ऋण नहीं होता। वह सब प्रकारके ऋणोंसे मुक्त होता है।" इनकी ऐसी बातोंको सुनकर श्रील प्रभुपादकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उन्होंने इस विषयमें कुछ भी नहीं कहा। मठवासी ब्रह्मचारीगण श्रीविनोदविहारीकी श्रीगुरुदेव और भजनके प्रति ऐसी निष्ठा देखकर विस्मित हो गये।

* * *

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीकी अपूर्व गुरुनिष्ठा

१९२५ ई. में श्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें पूर्व वर्षोंकी भाँति श्रीनवद्वीपधामकी सोलह क्रोसकी परिक्रमा आरम्भ हुई। बड़े समारोहपूर्वक सङ्कीर्तनके साथ हजारों श्रद्धालु यात्री परिक्रमा कर रहे थे। साथमें हाथीकी पीठपर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारीके विग्रहके साथ श्रील प्रभुपाद भी उस यात्रामें पैदल चल रहे थे। जब परिक्रमा संघ वर्तमान कुलियाद्वीपके अन्तर्गत प्रौढ़ामायाके मन्दिरके सामने श्रील प्रभुपादके मुखसे धाम-माहात्म्य श्रवणकर रहा था, उसी समय कुलिया नवद्वीपके तथाकथित ब्राह्मण और जातिगोस्वामीके लोगोंने ईंट, पत्थर, गरम पानी, सोडावाटरकी बोतलों आदिसे आक्रमण कर दिया। उनके अत्याचारसे चारों ओर हाहाकार मच गया। यात्रीगण प्राण बचानेके लिए इधर-उधर भागने लगे। किसीको भी एक दूसरेकी सुध नहीं थी। इसी समय श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने प्रभुपादकी रक्षा करते हुए उन्हें पासके ही एक भक्तके घरमें पहुँचा दिया। उपद्रवी भीड़ श्रील प्रभुपादको मारनेके लिए ढूँढ़ रही थी। श्रीविनोदविहारीने तत्क्षणात् श्रील प्रभपादके संन्यासी वेष और दण्डको स्वयं ग्रहण कर लिया तथा अपने सफेद वस्त्र श्रील प्रभुपादको पहना दिये और किसी प्रकार श्रील प्रभुपादको इस साधारण वेषमें ही श्रीधाम मायापुर भेज दिया। उपद्रवी भीड़ उन्हें पहचान नहीं सकी। सभी वैष्णव लोग श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीकी अपूर्व गुरुनिष्ठासे बड़े विस्मित हुए।

श्रीलप्रभुपाद-दशकम्

(श्रील भक्तिरक्षक-श्रीधर गोस्वामी महाराज-विरचितम्)

सुजनार्बुदराधितपादयुगं युगधर्मधुरन्धर पात्रवरम्।
वरदाभयदायक-पूज्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादम्॥१॥

मैं कोटि-कोटि सज्जनोंके द्वारा आराधित, कृष्ण सङ्कीर्तन युग-धर्मके संस्थापक, विश्ववैष्णव राजसभाके पात्रराज अर्थात् अधिकारीवर्गमें श्रेष्ठतम, निखिल जीवोंके भय दूर करनेवालोंकी भी मनोकामना पूर्ण करनेवाले, सर्वपूज्य उन श्रील प्रभुपादके श्रीचरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥१॥

भजनोर्जितसज्जनसंघपतिं पतिताधिककारुणिकैकगतिम्।
गतिवञ्चितवञ्चकाचिन्त्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥२॥

जो भजन-सम्पन्न सज्जन-वृन्दोंके अधिपति हैं, जो पतितजनोंके प्रति अति करुणामय तथा उनकी एकमात्र गति हैं एवं जो वञ्चकोंके भी वञ्चक हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके अचिन्त्य चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥२॥

अतिकोमलकाञ्चनदीर्घतनुं तनुनिन्दितहेममृणालमदम्।
मदनार्बुदवन्दितचन्द्रपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥३॥

अतिकोमल काञ्चनवर्णवाले सुदीर्घ तनु जिसके द्वारा स्वर्णमय कमलनालोंकी मत्तता (सौन्दर्य) भी निन्दित होती है, जिन नख-चन्द्रोंकी वन्दना कोटि-कोटि कामदेव करते हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥३॥।

निजसेवकतारकरञ्जिविधुं विधूताहितहुङ्कृतसिंहवरम्।
वरणागतबालिश-शन्दपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥४॥

जो नक्षत्र-मण्डलको रंजित करनेवाले चन्द्रकी तरह सेवक-मण्डली द्वारा परिवेष्टित होकर उनके चित्तको प्रफुल्लित रखते हैं, भक्तिविद्वेषिजन जिनके सिंहनादसे भयभीत रहते हैं एवं निरीह व्यक्ति जिनके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहणकर परम कल्याण लाभ करते हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥४॥

विपुलीकृतवैभवगौरभुवं भुवनेषु विकीर्तित गौरदयम्।
दयनीयगणार्पित-गौरपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥५॥

जिन्होंने श्रीगौरधामका (श्रीनवद्वीपधामका) विपुल ऐश्वर्य प्रकटित किया है, जिन्होंने श्रीगौराङ्गदेवकी महोदारताकी कथाओंका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार किया है एवं जिन्होंने अपने कृपापात्रोंके हृदयमें श्रीगौरपादपद्मकी स्थापना की है, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥५॥

चिरगौरजनाश्रयविश्वगुरुं गुरु-गौरकिशोरक-दास्यपरम्।
परमादृतभक्तिविनोदपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥६॥

जो चैतन्यमहाप्रभुके आश्रितजनोंके नित्य आश्रयस्थल और जगद्गुरु हैं, जो अपने गुरु श्रीगौरकिशोरके सेवापरायण हैं एवं जो श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके सम्बन्धमात्रसे ही परम आदरयुक्त हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥६॥

रघुरूपसनातनकीर्तिधरं धरणीतलकीर्त्तितजीवकविम्।
कविराज नरोत्तमसख्यपदमं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥७॥

जो श्रीरूप, सनातन और रघुनाथके कीर्तिरूपी झण्डेका उत्तोलनकर विराजमान हैं, अनेक लोग इस धरणीतलपर जिन्हें पाण्डित्य-प्रतिभामय जीव गोस्वामीसे अभिन्न तनु कहकर उनकी प्रशंसा किया करते हैं एवं जिनका श्रीलकृष्णदास कविराज तथा ठाकुर नरोत्तमसे सख्यभाव है, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥७॥।

कृपया हरिकीर्त्तनमूर्तिधरं धरणीभरहारक-गौरजनम्।
जनकाधिकवत्सल स्निग्धपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥८॥

जीवोंके प्रति असीम कृपाकर जो मूर्त्तिमान हरिकीर्तनरूपमें प्रकाशित हैं, जो धरणीके पापभारको दूर करनेवाले गौरपार्षद हैं एवं जो जीवोंके प्रति पितासे भी अधिक वात्सल्यके सुकोमल आकरस्वरूप हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥८॥

शरणागतकिङ्करकल्पतरुं तरुधिक्कृतधीरवदान्यवरम्।
वरदेन्द्रगणार्चितदिव्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥९॥

शरणागत किङ्करोंके लिए (अभीष्ट प्रदान करनेमें) जो कल्पतरुके समान हैं, जिनकी सहिष्णुता और उदारता वृक्षोंको भी लज्जित करती हैं एवं वरदाताओंमें श्रेष्ठ व्यक्ति भी जिनके दिव्य श्रीचरणकमलोंकी पूजा किया करते हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥९॥

परहंसवरं परमार्थपतिं पतितोद्धरणे कृतवेशयतिम्।
यतिराजगणैः परिसेव्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादम्॥१०॥

जो परमहंसकुलके चूड़ामणि हैं, जो परम पुरुषार्थ श्रीकृष्णप्रेम-सम्पत्तिके मालिक हैं, पतित जीवोंके उद्धारके लिए जिन्होंने संन्यासीका वेश धारण किया है एवं श्रेष्ठ त्रिदण्डि संन्यासियोंका समूह जिनके पादपद्मोंकी सेवा करता है, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥१०॥

वृषभानुसुतादयितानुचरं चरणाश्रित रेणुधरस्तमहम्।
महदद्भुतपावनशक्तिपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादम्॥११॥

जो वृषभानुनन्दिनीके परमप्रिय अनुचर हैं, जिनकी चरण-रजको मैं अपने मस्तकपर धारण करनेके सौभाग्यके लिए अभिमान करता हूँ, उन अद्भुत पावनीशक्तिसम्पन्न श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें मैं सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥११॥